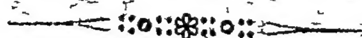
श्री भूरसुन्दरी विवेक विलास।



प्रिय सज्जनो !

यदि आपको मानव जीवन के यथार्थ लक्ष्यके जानने की अभिरुचि हो, श्री जैनसिद्धान्त के गूढ़ रहस्यों के विज्ञान की अभिलाषा हो, भव्य जीवों के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विज्ञान प्राप्त करना हो, धर्म और अधर्म के यथार्थ स्वरूप के जानने की वाञ्छा हो, श्री जैन सिद्धान्त में कहे हुए नव तत्त्वों के विज्ञान की कामना हो, सत्य, शिक्षा, ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य धर्म आदि उपयोगी विषयो के महत्त्व की जिज्ञासा हो, यदि आप कर्मों के भेद और उनके विपाक को जानना चाहते हों, सन्नीति के अवलम्ब से अपने मानव-जीवन को सफल करना चाहते हों तथा यदि आपको लौकिक व पारलौकिक विविध विषयों का विज्ञान प्राप्त करना हो तो नीचे लिखे पते से केवल ।|) मात्र डाक व्यय भेजकर बिना न्यौछावर के "श्री भूरसुन्दरी विवेक विलास" नामक बृहद् ग्रंथ का अवश्य अवलोकन कीजियेः—

मिट्ठनलाल कोठारी पल्लीवाल जैन,
स्वदेशी भण्डार-भरतपुर।

❀ सत्यमेव विजयते ❀

2137

* श्रीः *

❀ श्री पञ्च परमेष्ठिने नमः ❀

भूरसुन्दरी बोध विनोद ।

जिसको

श्री जैन श्वेताम्बर सम्प्रदायस्थ श्री बाईस टोला के श्री १००८ श्री नाथूराम जी महाराज के सम्प्रदाय की आर्या जी श्री १००८ श्री चम्पा जी महाराज की शिष्या सती शिरोमणि श्री १००८ आर्या

भूरसुन्दरी जी महाराज ने

सर्व साधारण के लाभ के लिये

निर्मित किया ।

जिसका

जयदयाल शर्मा शास्त्री

(भूतपूर्व संस्कृत प्रधानाध्यापक श्री डूँगर कालेज–वीकानेर)

ने संशोधन किया ।

प्रथम वार १००० प्रति | वीर संवत २४५३ विक्रमीय संवत १९८४ | न्यौछावर सदुपयोग

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतो वधीत् ॥१॥

❀ यतोधर्मस्ततो जयः ❀

विषय-सूची

॥ श्रीः ॥



प्रियसज्जनो !

गतवर्ष श्री भरतपुर राज्य में चातुर्मास्य के समय कतिपय सज्जनों के अनुरोध से "भूरसुन्दरी विवेक विलास" नामक ग्रन्थ को लिखकर पाठक जनों की सेवा में प्रस्तुत किया था, हर्ष का विषय है कि सहृदय पाठक जनों ने उसका अवलोकन और मनन कर मेरे परिश्रम को सफल किया। मैं उक्त ग्रन्थ की प्रस्तावना में प्रकट कर चुकी हूं कि—"मैं किसी भाषा के साहित्य की न तो विदुषी हूं और न लेखिका ही हूँ किंतु केवल संस्कृत व हिंदी भाषा के साहित्य से मेरा कुछ २ परिचय मात्र है," ऐसी दशा में भी मेरे बनाये हुये उक्त ग्रन्थ को सहृदय पाठक जनो ने अपनाकर जो मुझे अनुगृहीत किया है; इस के लिये मैं उनकी चिरबाध्या हूँ।

इस वर्ष यहाँ (श्री बीकानेर राज्य में) चातुर्मास्य होने पर गतवर्ष के समान यहाँ भी कतिपय सज्जनों ने मुझ से यह अनुरोध किया कि—"कोई छोटी सी अति उपयोगी पुस्तक का निर्माण कर सर्वसाधारण का हित-सम्पादन करें।"

उक्त सज्जनों की अभिलाषा-पूर्ति एवं सर्वसाधारण को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से यह "भूरसुन्दरी-बोध-विनोद" नामक छोटी सी पुस्तक लिखकर पाठक जनों की सेवा में प्रस्तुत की जाती है। इस पुस्तक में छोटे २ चार प्रकरण हैं, उनमें से प्रथम प्रकरण में सम्यक्त्व

एवं तीन रत्नों अर्थात् ज्ञान, दर्शन और चारित्र का संक्षेप से विवेचन किया गया है। दूसरे प्रकरण में धर्म के साधन भूत-दान, शील, तप और भावना का संक्षेप में वर्णन कर भाषा पद्यों में तृष्णा, त्याग आदि धर्म द्वारों का वर्णन किया गया है। तीसरे प्रकरण में श्रीमान् विद्वद्वर्य, साधुगुण समलंकृत, मुनिराज, श्री १००८ श्री भज्जूलाल जी महाराज[1] कृत उपदेश पद्य अर्थात् कवित्त और सवैया आदि लिखे गये हैं, इसके पश्चात् भक्ति विषयक कुछ भाषा पद्य लिखे गये हैं। चौथे

१—पाठकजनों के विज्ञान के लिये यहाँ पर उक्त महाराज के सम्प्रदाय की पट्टावलि का उल्लेख किया जाता है:—

(क)—इस सम्प्रदाय में प्रथम पूज्य श्री १००८ श्री श्री श्री श्री धनजी महाराज थे।

(ख)—श्री धनजी महाराज के शिष्य पूज्य श्री विशनो जी महाराज थे।

(ग)—श्री विशनो जी महाराज के शिष्य पूज्य श्री मनजी महाराज थे।

(घ)—श्री मनजी महाराज के जेष्ठ शिष्य पूज्य श्री नाथूराम जी महाराज थे।

(ङ)—श्री नाथूराम जी महाराज के २७ शिष्य थे, उनमें जेष्ठ शिष्य श्री लक्ष्मीचन्द्र जी महाराज थे।

(च)—श्री लक्ष्मीचन्द्रजी महाराज के शिष्य पूज्य छत्रमलजी महाराज थे।

(छ)—श्री छत्रमलजी महाराज के तीन शिष्य थे—पूज्य श्री रतनचन्दजी महाराज, पूज्य श्री राजाराम जी महाराज तथा पूज्य श्री उत्तमचन्दजी महाराज।

(ज)—श्री रतनचन्दजी महाराज के शिष्य पूज्य श्री भज्जूलालजी महाराज थे (इन्हीं महोदय के बनाये हुये पद्य यहाँ पर उद्धृत किये गये हैं)।

(झ)—श्री भज्जूलालजी महाराज के शिष्य श्री पन्नालालजी महाराज 'तपस्वी जी थे (इन महोदय ने ३६ वर्ष पर्यन्त छाछ पी थी तथा बेले बेले से पारणा किया था, बेले के पारणे में ये छाछ का जल लेते थे, ग्रीष्म ऋतु में ये महोदय छः घंटे तक धूप की आतापना लिया करते थे, एवं शीत ऋतु में वस्त्र विहीन रहते थे, ये महानुभाव बड़े भाग्यवान् महान् पुरुष थे, ये महोदय बीकानेर के ही

प्रकरण में भक्ति को उत्पन्न करने वाले अनेक प्रकार के स्तवन को लिखकर अन्त में बोधप्रद भजनों का संग्रह किया गया है। इस प्रकार इस पुस्तक को चार प्रकरणों में विभक्त कर उक्त विषयों का समावेश किया गया है। पुस्तक के निर्दिष्ट विषयों की ओर लक्ष्य ले जाकर पाठक जन इसकी उपयोगिता वा अनुपयोगिता का स्वयं विचार कर सकते हैं। अतः इस विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है।

इस पुस्तक में गद्य भाग की अपेक्षा पद्यभाग का विशेषतया इसलिये आयोजन किया गया है कि वह (पद्यभाग) पाठकों को सहज में कण्ठस्थ होजाता है, समय २ पर व्यवहार में भी विशेष उपयोगी होता है तथा उसमें हृदय ग्राहिणी शक्ति भी स्वभावतया गद्य की अपेक्षा विशेष होती है।

"भूरसुन्दरी-विवेक-विलास" संशोधन के समान इस पुस्तक का भी संशोधन श्री पण्डित जयदयाल जी शर्मा शास्त्री (भूतपूर्व संस्कृत प्रधानाध्यापक श्रीडूँगर कालेज–बीकानेर) ने किया है, संशोधन

अगरचन्दजी पारख के आत्मज थे, इन्होंने सत्रह की साल में दीक्षा ली थी, ये अत्यन्त कठिन तपस्या के करने वाले थे, इनके पाट में वर्त्तमान में पूज्य श्री मोतीलालजी महाराज मौजूद हैं)।

(ञ)–श्री राजारामजी महाराज के शिष्य श्री रामलालजी महाराज थे।

(ट)–श्री रामलालजी महाराज के शिष्य वर्त्तमान में श्री फकीरचन्दजी फूलचन्दजी महाराज हैं।

(ठ)–इन्हीं सन्तों के टोले में परम विदुषी आर्याजी श्री धर्माजी महाराज श्री सदेव कुँवर जी महाराज एवं श्री रायकुँवरजी महाराज थीं।

(ड)–उक्त महोदया की शिष्या श्रीमती श्री चम्पाजी महाराज थीं (इन महोदया की संक्षिप्त जीवनी "भूरसुन्दरी-विवेक-विलास" ग्रन्थ में लिखी गई है)

(ढ)–उक्त महोदया के चरण कमल की सेविका तच्छिष्या मैं भूरसुंदरी हूँ।

कार्य के अतिरिक्त उक्त पण्डित जी महोदय ने पुस्तक में कथित आवश्यक विषयों में यथास्थल गीता आदि ग्रन्थों के प्रमाणों का भी आयोजन टिप्पणी में किया है तथा कठिन व अप्रचरित शब्दों का अर्थ भी टिप्पणी में ही प्रदर्शित किया है। इस परिश्रम के लिये श्रीमान् पण्डित जी महोदय को विशुद्ध भाव से धन्यवाद प्रदान किया जाता है।

पुस्तक के प्रकाशन में श्रीयुत लाभचन्द, श्रीमाल आदि भाइयों ने तथा गुलाब बाई आदि बाइयों ने उत्साहपूर्वक योग प्रदान किया है इसलिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में सहृदय पाठक जनों से मेरा विनम्र निवेदन है कि इस पुस्तक को अपनाकर एवं पुस्तक में स्थित त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर इसके अवलोकन और पठन-पाठन के द्वारा मुझे अनुगृहीत करें। यदि इस छोटी सी पुस्तक में प्रतिपादित विषयों के अवलोकन और मनन से पाठकवर्ग को कुछ भी लाभ प्राप्त हुआ तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगी।

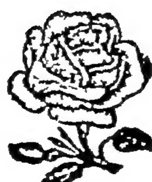
किमधिकं विज्ञेषु।

सज्जन–हितैषिणी–

आर्या भूरसुन्दरी

आसाणियों का चौक,

बीकानेर।



❀ श्रीः ❀

मङ्गलाचरण

जिनवर जी म्हाने करो न भवोदधि पार।
चौबीसे जिनराज जी हो, पहुँचा मुक्ति मझार ॥
अष्ट कर्म अलगा करी ने, पाय्या शिवपुर द्वार जी ॥१॥

अविनाशी सुख पामियां रे, घाती करम खपाय।
अवगाहना अटल लही रे, आयू खय करिने जिनरायजी ॥२॥

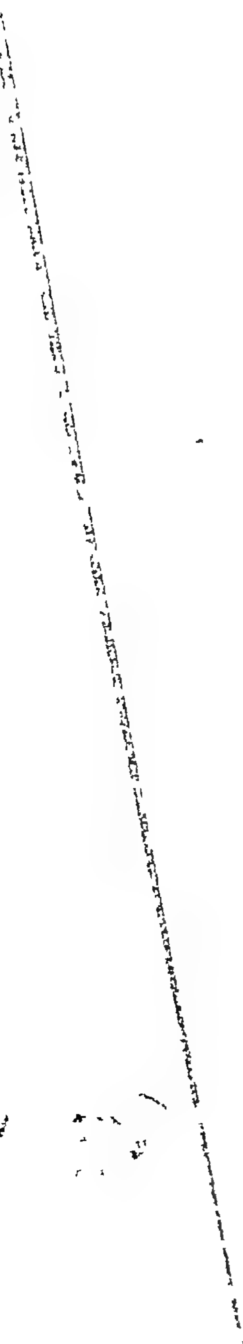
नाम कर्म ने खय करी ने, अनमूरती कहलाय।
अगुरु लघूपन अनुभव्यो, गोत्र कर्म मूकाय जी ॥३॥

वर्ष तिरासी भरतपुर, मैं कीन्हों चौमास।
पूज्यवर्य श्री नाथूरामजी रो, मुझ मन बड़ो हुलास ॥४॥

चम्पा जी सती मोटका रे, घनां गुनां री खान।
तच्छिष्या भूरसुन्दरी करि, गुरुचरण सुध्यान जी ॥५॥

सज्जन हित "भूरिसुन्दरी-बोध-विनोद" बनाय।
पढ़हु सुपाठक भव्य जन, मन बुधि चित्त लगाय जी ॥६॥





॥ श्रीः ॥

॥ श्री परमेष्ठिने नमः ॥

॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥

* भूरसुन्दरी बोध विनोद *



प्रथम प्रकरण।



१—सम्यक्त्व–स्वरूप।

धर्माभिलाषी जनों को धर्म के प्रधान अङ्ग सम्यक्त्व का स्वरूप अवश्य जानना चाहिये कि सम्यक्त्व किस को कहते हैं, अर्थात् सम्यक्त्व का क्या स्वरूप है, क्योंकि सम्यक्त्व के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होने से ही धर्म का अनुष्ठान हो सकता है, इसी विषय को विचार कर यहाँ पर सब से पहिले सम्यक्त्व के स्वरूप का वर्णन किया जाता है:—

आत्मा, लोक, कर्म और क्रिया, ये चार शुद्ध वाद हैं, क्योंकि इनका ही यथार्थ विचार करने से शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

सम्पूर्ण छः काय के जीव आत्मा के ही समान हैं, सब जीव सुख की अभिलाषा करते हैं, अर्थात् कोई जीव दुःख की अभिलाषा नहीं करता है, सम्पूर्ण जीव परवश होकर अर्थात् कर्म के आधीन होकर परलोक में जाते हैं, प्रत्येक जीव को सम्पत्ति, विपत्ति, सुख, दुःख तथा ज्ञान और अज्ञान, कर्मवश ही प्राप्त होता है अर्थात् जीव की प्रत्येक

दशा कर्म का नाटक रूप है, अकृत[1] कर्म का योग[2] जीव को कभी नहीं होता है, चेतन स्वयं ही कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता है—

जीवाजीव संयोग है, क्षीर नीर के न्याय ।
अध्यवसाय विशेष से, आतम वन्धन थाय ॥ १ ॥

पुण्य और पाप भी कर्मवन्ध के कारण हैं अर्थात् पुण्य शुभ कर्मवन्ध का कारण है तथा पाप अशुभ कर्मवन्ध का कारण है ।

पाप के आने के मार्ग को आश्रव कहते हैं, पाप के आगमन[3] के रोकने को संवर कहते हैं, कर्मों के जला देने को निर्जरा कहते हैं तथा पुण्य और पाप के वन्ध के टूटने को मोक्ष कहते हैं ।

सम्यक्त्व से युक्त पुरुष हेय[4], ज्ञेय[5] और उपादेय[6] का जानने वाला होता है ।

वास्तव में कषायों का उपशम कर मुक्ति मार्ग की अभिलाषा करना यही सम्यक्त्व का भावार्थ है ।

शत्रु मित्र आदि सब जीवों पर समभाव रखना एवं काञ्चन, लोष्ठ और सुख और दुःख आदि सब को एक रूप से समझना, यह सम्यक्त्व का पहिला लक्षण[7] है ।

१—न किये हुए । २—सम्बन्ध । ३—आने । ४—छोड़ने योग्य । ५—जानने योग्य । ६—ग्रहण करने योग्य ।

७—गीता में भी कहा है कि—सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । ईक्षते योग युक्तात्मा, सर्वत्र समदर्शन. ॥ १ ॥ (अध्याय ६ श्लोक २९) अर्थात योग से युक्त आत्मा वाला पुरुष सर्वत्र समदर्शी होता है, वह आत्मा को सर्वभूतों में स्थित देखता है तथा सब भूतों को आत्मा में स्थित देखता है ॥ १ ॥ आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यतियोऽर्जुन ॥ सुखं वा यदि वा दुःखं सयोगी परमो मतः ॥२॥

सम्यक्त्व का दूसरा लक्षण संवेग है, संसार के कार्य में आसक्त न होकर परम वैराग्य का परिणाम रखने को संवेग कहते हैं[1]।

सम्यक्त्व का तीसरा लक्षण निर्वेग है, संसार के कार्य से निवृत्त रहने तथा यथाशक्ति उसका त्याग करने को निर्वेग कहते हैं।

सम्यक्त्व का चौथा लक्षण अनुकम्पा है, सब जीवों को दुःखी देखकर उन पर दया का परिणाम रखने को अनुकम्पा कहते हैं, अनुकम्पाशील जनों को दूसरे का दुःख देखकर रोमाञ्च हो जाता है और वे दूसरों के दुःख से दुःखी तथा दूसरों के सुख से सुखी होते हैं।

सम्यक्त्व का पाँचवाँ लक्षण आस्था है—आस्तिकभाव को आस्था कहते हैं अर्थात् लोक, परलोक, धर्म, गुरु, देव, कर्त्ता, कर्म और कर्मफल आदि विषयों में श्रद्धा रखने का नाम आस्था है[2]।

(अ० ६ श्लोक० ३२) अर्थात् हे अर्जुन ! जो पुरुष सब प्राणियों में अपने समान देखता है—सब के सुख वा दुःख को अपने समान जानता है वही उत्तम योगी माना जाता है ॥ २ ॥ विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिता समदर्शिनः ॥ ३ ॥ (अ० ५ श्लो० १८) अर्थात् ज्ञानी पुरुष-विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण में, गाय में, हाथी में, कुत्ते में तथा चाण्डाल में समदर्शी होते हैं ॥ ३ ॥ समदुःख सुखः स्वस्थ, समलोष्ठाश्मकाञ्चनः । तुल्य प्रियाप्रियोधीर स्तुल्य निन्दात्मसंस्तुतिः ॥ ४ ॥ (अ० १४ श्लो० २५) अर्थात् जो धीर पुरुष है वह सुख और दुःख को समान समझता है, आत्मनिष्ठ रहता है, लोष्ठ, पत्थर और सुवर्ण को समान समझता है, प्रिय और अप्रिय को समान जानता है—तथा अपनी निन्दा और स्तुति को समान ही समझता है ॥ ४ ॥

१—थोड़ी देर तक रहने वाले मसाणिया वैराग्य आदि को नहीं रखना चाहिये ।

२—गीता में कहा है कि—अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् । असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ १ ॥ (अ० १७—२८) अर्थात् अश्रद्धा से जो हवन किया हो, दान दिया हो, तप किया हो या जो कुछ कर्म किया हो वह असत् कहा जाता है, हे अर्जुन ! वह (कर्म) न परलोक में और न इस लोक में ही हितकारी होता है ॥ १ ॥

दोहा-उभय लोक सत्तामनन-होवहि आस्तिकभाव।
विहित कर्म फल लोक सब-जीव शुभाशुभ पाव॥१॥

वर्त्तमान समय में बहुत से लोग अपनी अज्ञानता के कारण यह कहा करते हैं कि-"अपने धर्म गुरु के सिवाय अन्य को वन्दना करने से सम्यक्त्व में बट्टा लगता है," उन भोले भाइयों से हमारा यह कहना है कि अरे भोले भाइयो ! प्रथम तो शुद्ध सम्यक्त्व का प्राप्त होना ही बहुत कठिन है, और तुम लोगों को सम्यक्त्व शब्द का यथार्थ अर्थ ही मालूम नहीं है कि सम्यक्त्व किस को कहते हैं-देखो ! सर्वोपरि सम परिणाम रखने का नाम सम्यक्त्व है; अर्थात् शत्रु और मित्र आदि सब जीवों पर समभाव का रखना ही सम्यक्त्व का वास्तविक लक्षण है[1], इसलिये प्रथम सम्यक्त्व शब्द के वाच्यार्थ का ही ठीक रीति से पालन करना चाहिये, जब पास में सम्यक्त्व ही नहीं है तो बट्टा किस में लगेगा ? देखो ! जब रुपया नाकिल होता है तब उसमें बट्टा लगता है किन्तु जब रुपया ही नहीं है तो बट्टा किस बात का लगेगा ?

पाठक जनों के लाभ के लिये यहां पर सम्यक्त्व के स्वरूप का संक्षेप में कुछ विवेचन किया जाता है:—

सम्यक्त्व का आवरण करने वाली सात प्रकृतियां हैं-उन सातों का क्षय होने से क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, यह सम्यक्त्व साद्यपर्यवसित कहलाता है[2] सातों प्रकृतियों का उपशम होने से औपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है[3], इसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त की मानी गई है, पीछे यह सम्यक्त्व या तो मिथ्यात्त्व रूप में परिणत हो

१—लक्षण के विना लक्ष्य का ज्ञान नहीं होता है-" लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः"।

२—इसका आदि होता है परन्तु अन्त नहीं होता है।

३—चार अनन्तानुबन्धी, मिथ्यात्त्वमोहनी, मिश्र मोहनी और सम्यक्त्व मोहनी। इन सात प्रकृतियों के उपशम भाव से औपशमिक सम्यक्त्व मिलता है।

जाता है या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व रूप में परिणत हो जाता[1] है, इस अवस्था में प्रकृतियाँ वर्त्तमान काल में उदय को प्राप्त नहीं होती हैं, किन्तु सत्ता रूप में रहती हैं,[2] जैसे गदले पानी को बारंबार नितारने से वह ऊपर से निर्मल दीखता है, परन्तु उसके नीचे गदलापन बना रहता है, इसी प्रकार उपशम भाव के योग से तो शुद्धता होती है, परंतु सातों प्रकृतियों का मैल सत्ता रूप में विद्यमान रहता है ।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में सात प्रकृतियों में से कुछ प्रकृतियों का क्षय हो जाता है तथा कुछ प्रकृतियों का उपशम हो जाता है,[3] सास्वादान सम्यक्त्व को भी क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का ही अंश जानना चाहिये ।

मिथ्यात्त्व मोहनी प्रकृति का दल गाढ़ होता है, इसकी उदय में आई हुई वर्गणा का क्षय हो जाने पर कुछ वर्गणा सत्ता में विद्यमान रहती है तथा कुछ वर्गणा उदय भाव में रहती है, इस अवस्था में मिथ्यात्त्वी पुरुष नितारे हुए जल के समान ऊपर से तो उजला दीखता है, परंतु मिथ्यात्त्व के उदय से उसको देव गुरु और धर्म की पहिचान नहीं होती है, ऐसे पुरुष को कुगुरु, कुदेव और कुधर्म प्रिय लगता है, शुद्ध धर्म से वह उपरत रहता है, ऐसे पुरुष में मिथ्यात्त्व मोहनी प्रकृति का योग जानना चाहिये, वास्तव में यह (मिथ्यात्त्व मोहनी) प्रकृति सम्यक्त्व की आवरण रूप है[4] ।

१—जैसे साबुन आदि के योग से वस्त्र का मैल कट जाता है, इसी प्रकार से उपशम भाव को प्राप्त हुई सातों प्रकृतियों में से कुछ प्रकृतियों का उपयोगी साधन विशेष से क्षय हो जाने पर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व हो जाता है ।

२—तात्पर्य यह है कि चार अनन्तानुबन्धिनी, मिथ्यात्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी, तथा सम्यक्त्व मोहनी, ये सात प्रकृतियां उदय भाव में न रह कर केवल सत्ता रूप में रहती हैं ।

३—इस सम्यक्त्व के ग्रन्थों में पृथक् २ भङ्ग (भांगे) बतलाये गये हैं ।

४—ढँकने के समान है ।

मिथ्यात्त्व वर्गणादलिक का भोग करते २ जब वह थोड़ा सा रह जाता है उस समय मिश्र मोहनी का उदय होता है, उस समय इस प्रकार का परिणाम होता है कि शुद्ध देव, गुरु और धर्म पर द्वेष नहीं होता है, किसी पर आस्था नहीं होती है," कुदेव, कुगुरु, और कुधर्म पर राग भी नहीं होता है—तथा सच्चे और झूठे को समान समझता है, बस इसी को मिश्र मोहनी कहते हैं, यद्यपि यह मिश्र मोहनी प्रकृति भी सम्यक्त्व का आवरण (ढँकना) है तथापि गाढ़ आवरण नहीं है, इसका परिणाम अन्तर्मुहूर्त तक रहता है ।

सम्यक्त्व मोहनी प्रकृति यद्यपि क्षायिक सम्यक्त्व का आवरण (ढँकना) है तथापि मिथ्यात्वी में सम्यक्त्व मोहनी नहीं होती है, किन्तु क्षायोपशमिक सम्यक्त्व रहता है ।

यह (सम्यक्त्व मोहनी) प्रकृति सम्यक्त्व को अत्यन्त शुद्ध नहीं होने देती है किन्तु इस का उदय होने पर शङ्का आदि दोषों के सहित सम्यक्त्व होता[1] है । इस सम्यक्त्व मोहनी के उदय में चल, मल और अगाढ़ ये तीन दोष होते हैं । कोई अज्ञानी लोग देव और गुरु से राग करने को सम्यक्त्व मोहनी कहते हैं, यह उनका कथन मिथ्या है, क्योंकि देव और गुरु से राग तो दशवें गुण स्थान तक रहता है तथा सम्यक्त्व मोहनी तो केवल सातवें गुण स्थान तक ही रहती है, देव, गुरु और धर्म का सेवन करते समय जो ऋद्धि, सन्तान और कलत्र आदि रूप इस लोक के फल का मांगना है तथा स्वर्ग सुख आदि रूप जो परलोक के फल का मांगना है ये सब बातें पूर्वोक्त तीन दोषों के सहित होती हैं, क्योंकि लौकिक फल की आशा

१—ज्ञानान्तराय और दर्शनान्तराय के कारण शंका का उत्पन्न होना सम्यक्त्व में मैल रूप होता है, परमात्मा या अपने स्वरूप के सत्यशास्त्रोक्त सत्य ज्ञान में, अपने कर्त्तव्य करने में तथा अपने निश्चय में शंका करते रहना, यही शंका का दुरुपयोग है ।

कर जो कार्य करता है वह भी सम्यक्त्व मोहनी का ही स्वरूप[1] है, इसमें मिथ्यात्व ही मल रूप जानना चाहिये, यह (मल) उज्ज्वल क्षायिक सम्यक्त्व को नहीं होने देता है।

२--रत्नत्रय--स्वरूप।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र, ये तीन रत्नस्वरूप हैं, इसलिये इन तीनों को "रत्नत्रय" कहते हैं, अब यहाँ पर क्रम से इनके स्वरूप के विषय मे कुछ कथन किया जाता है:—

१—ज्ञा अवबोधने धातु से भाव और करण कारक में ल्युट् प्रत्यय के करने से "ज्ञान" शब्द बनता[2] है, ज्ञान शब्द का वाच्यार्थ यही है कि "जिसके द्वारा वस्तु के स्वरूप का बोध हो," इस ज्ञान की प्राप्ति के विना जीवात्मा निर्मल नहीं हो सकता है तथा ज्ञान के बिना मुक्ति भी कभी नहीं हो सकती है, देखो दश वैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन मे कहा है कि:—

पढ मं नाणं तओ दया एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही छेयपावगं॥ गाथा १०

१—गीता में कहा है कि "यस्तु कर्मफल त्यागी स त्यागीत्यभिधीयते" (अ०-१८-११)

अर्थात जो पुरुष कर्म फल की इच्छा न रख कर कर्म करता है, वही त्यागी कहा जाता है।

२—भाव अर्थ में ल्युट् प्रत्यय के आने से—"ज्ञातिर्ज्ञानम्" यह व्युत्पत्ति होगी, इस व्युत्पत्ति में ज्ञान शब्द का अर्थ "जानना" होगा तथा करण कारक में ल्युट् प्रत्यय के आने से—"ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानम्" यह व्युत्पत्ति होगी, इस व्युत्पत्ति में ज्ञान शब्द का यह अर्थ होगा कि "जिसके द्वारा पदार्थ स्वरूप का बोध होता है उसको ज्ञान कहते हैं"।

इस गाथा में श्री सुधर्मा स्वामी ने यह फर्माया है कि मनुष्य को प्रथम ज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिए, क्योंकि ज्ञान के विना क्रिया व्यर्थ होती है, ज्ञान के विना जीव को आत्म ज्ञान (स्वरूप ज्ञान) भी नहीं हो सकता है, ज्ञान के होने से ही षट् काय के जीवों की दया भी हो सकती[1] है, क्योंकि षट् काय के स्वरूप के परिज्ञान के विना दया का पालन कैसे हो सकता है तथा दया के पालन के विना चारित्र की प्राप्ति नहीं हो सकती है, सात लाख पृथिवी काय से लेकर चौरासी लाख जीव योनियां हैं, इन के भेद इस प्रकार हैं कि-पृथिवी काय के जीवोंकी सात लाख जातियां हैं, इनके मूल भेद साढ़े तीन सौ हैं, इनका विवेचन इस प्रकार है कि साढ़े तीन सौ को पांच वर्णों से गुणा करने पर एक हजार सात सौ पचास (१७५०) हुए, अब इनको गन्ध की अपेक्षा से दुगुना किया तो तीन हजार पाँच सौ (३५००) हुए, अब तीन हजार पाँच सौ को रस की अपेक्षा से पाँच से गुणा किया तो सत्रह हजार पांच सौ (१७५००) हुए, इन सत्रह हजार पाँच सौ को स्पर्श की अपेक्षा से आठ से गुणा किया तो एक लाख चालीस हजार (१४००००) हुए, अब एक लाख चालीस हजार को संस्थान की अपेक्षा से पांच से गुणा किया तो पृथिवी काय के जीवों की पूरी सात लाख (७०००००) जातियां हो गईं, इसी प्रकार से सब के गणित को जान लेना चाहिये[2] ।

सर्व संयती पुरुष को ज्ञान के द्वारा समस्त जीवों के स्वरूप को जानकर उन पर मन, वचन और काय से दया का पालन करना चाहिए, अज्ञानी पुरुष कुछ भी आत्म-कल्याणकारी कार्य को नहीं कर

१—षट् काय के जीवों का परिज्ञान होजाने पर ज्ञानी पुरुष जब उनके दुःख और सुख को अपने दुःख व सुख के समान जानेगा तब ही वह उन पर दया कर सकेगा (देखो गीता अध्याय ६ श्लोक ३२) ॥

२—इसी प्रकार से ८४ लाख जीव योनियों का परिगणन कर लेना चाहिये ।

सकता है, क्योंकि अबोध पुरुष इस बात को नहीं जान सकता है कि कौन सा मार्ग कल्याणकारी है तथा कौन सा मार्ग अकल्याणकारी है, क्योंकि अज्ञानी पुरुष सत् और असत् का निर्णय नहीं कर सकता है, देखोः—

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ॥
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं छेयं तं समायरे ॥गाथा११

अर्थात्—श्रुत ज्ञान के प्राप्त होने से कल्याण के मार्ग को जानता है तथा श्रुत ज्ञान से ही पाप का मार्ग ज्ञात होता है, तात्पर्य यह है कि धर्म और अधर्म का स्वरूप श्रुत ज्ञान के प्राप्त होने से ही अवगत होता है, इस प्रकार ज्ञान के द्वारा दोनों के स्वरूप को जानकर जो कल्याणकारी कार्य है उसी का आचरण करना चाहिये[1]।

जब ज्ञानावरणीय कर्म का आवरण होता है तब जीव को ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है, जिस प्रकार से मेघ का आवरण होने से सूर्य का प्रकाश मन्द हो जाता है, इसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म का आवरण होने पर ज्ञान का प्रकाश मन्द हो जाता है तथा उस ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से एवं मिथ्यात्त्व का क्षयोपशम होने से ज्ञान प्रकट होता है, तात्पर्य यह है कि जितना आवरण दूर होता है उतनाही ज्ञान का लाभ होता है तथा जितना ही ज्ञान का लाभ होता है उतना ही आत्मा निर्मल (शुद्ध) होता है, आत्मा के

१—सात्त्विक ज्ञान के विषय में गीता में कहा है किः "सर्व भूतेषु ये नैकं भावमव्ययमीक्षते, अविभक्तं विभक्तेषु, तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥१॥(अ०१८-२०) अर्थात् जिस ज्ञान से विभक्त अर्थात् भिन्न २ सब प्राणियों में एक ही अविभक्त और अव्यय भाव अथवा तत्त्व मालूम होता है वही सात्त्विक ज्ञान है।

विशुद्ध होने से कर्म की निर्जरा होती[1] है, निर्जरा के होने से कर्म क्षीण होता है, कर्म क्षीण होने से मुक्ति की प्राप्ति होती है, मुक्ति की प्राप्ति होने से पुद्गलों का वियोग होता है, पुद्गलों का वियोग होने से शुद्ध चैतन्य आत्मरूप होता है, शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होने से अजरपन और अमरपन की प्राप्ति होती है, तथा अजरपन और अमरपन की प्राप्ति होने से आत्मा गमनागमन (आवागमन) से रहित हो जाता है, इन सब बातों की प्राप्ति ज्ञान से होती है, ज्ञान के बिना अनन्त पुद्गलों का परावर्त्तन नहीं हो सकता है।

देखो, भगवती सूत्र का यह पाठ है कि:—असइ अदुवा अनत खु ते। अर्थात् इस संसार में जीव एक वार नहीं किन्तु एक २ योनि में अनन्त वार गया है इसलिये प्रथम ज्ञान का उद्यम करना चाहिये, क्योंकि ज्ञान से ही आत्मकल्याणकारी सर्व कार्यों की सिद्धि होती है, इसलिये ज्ञान को मुख्य जान कर प्रथम ज्ञान-प्राप्ति के लिये ही उद्यम करना चाहिये।

अब संक्षेप से दर्शन के विषय में कथन किया जाता है:—दर्शन का अर्थ श्रद्धान है—ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम अथवा क्षय होने से ज्ञान औद दर्शन की उत्पत्ति एक ही साथ में होती है, ज्ञान में दर्शन की नेमा तथा दर्शन में ज्ञान की नेमा रहती है, तात्पर्य यह है कि ये दोनों परस्पर में संलग्न रहते हैं, ज्ञान के द्वारा वस्तु का स्वरूप जाना जाता है तथा दर्शन के द्वारा वस्तु के

१—आत्मा की शुद्धि के लिए सङ्ग का त्याग कर कर्म करना चाहिये, देखो गीता में कहा है कि—कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि॥ योगिन. कर्म कुर्वन्ति संग त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये॥१॥ (अ० ५-११) इसका भावार्थ यह है कि—कर्मयोगी पुरुष ऐसी अहँकार बुद्धि न रक्खे कि "मैं कर्त्ता हूँ" किन्तु केवल शरीर से, मन से, बुद्धि से और इन्द्रियों से आसक्ति को छोड़कर आत्म शुद्धि के लिये अर्थात् अपना कर्त्तव्य पालन के लिये कर्म करे।

यथार्थ स्वरूप का श्रद्धान होता[1] है, दर्शन अर्थात् परम श्रद्धा के विना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है, सम्यक्त्व की प्राप्ति के विना मिथ्यात्त्व नहीं हटता है, मिथ्यात्त्व के हटने के विना जीव लघुकर्मा (हलके कर्म वाला) नहीं होता है तथा लघुकर्मा हुए बिना जिन मार्ग पर श्रद्धा नहीं होती है, इस विषय में उत्तराध्ययन में एक दृष्टान्त कहा गया है कि—एक पुरुष को ढिकोली, मंडोली और सोमलसर, इन तीन ग्रामों का भोजन (जीमन) का न्यौता आया, तीनों ग्रामों में तीन प्रकार का भोजन बनाया गया था अर्थात् ढिकोली में मोदक, मंडोली में मालपुआ तथा सोमलसर में बूरा चांवल बनाये गये थे, उस पुरुष ने अपने ग्राम से निकलते समय यह विचार किया कि कौन से ग्राम में भोजन करने के लिये चलूँ, कुछ सोच विचार करने के बाद उसने ढिकोली ग्राम का रास्ता लिया, कुछ दूर जाने के बाद फिर उसके मनका संकल्प बदल गया और उसने निश्चय किया कि मंडोली ग्राम में जाकर मालपुआ खाऊंगा, यह विचार कर उसने मंडोली ग्राम का रास्ता लिया, थोड़ी दूर जाने के बाद फिर उसका विचार बदल गया और उसने निश्चय किया कि सोमलसर ग्राम में जाकर मैं बूरा चांवल खाऊंगा, यह विचार कर उसने सोमलसर ग्राम का रास्ता लिया, थोड़ी दूर जाने के बाद फिर उसका विचार बदल गया और उसने निश्चय किया कि ढिकोली ग्राम में जाकर मोदक खाऊंगा, यह विचार कर उसने पुनः ढिकोली ग्राम का रास्ता लिया, थोड़ी दूर जाने के बाद फिर उसका विचार बदल गया और उसने पुनः मंडोली ग्राम का रास्ता लिया, इसी प्रकार विभिन्न विचार करते २ सन्ध्या (शाम) हो गई और वह पूर्वोक्त तीनों ग्रामों में से किसी ग्राम में नहीं पहुँच सका, इसलिये उसे भूखा ही रहना पड़ा, क्योंकि तीनों में से किसी एक ग्राम में जाने का उसने दृढ़ संकल्प नहीं किया था, यदि वह दृढ़ संकल्प और श्रद्धापूर्वक किसी एक ग्राम में जाता

१—यहां पर "दर्शन" शब्द का अर्थ देखना नहीं है, किन्तु श्रद्धा करना अर्थ है।

तो उसे भूखा न रहना पड़ता, इस दृष्टान्त का दार्ष्टान्तिक विषय यह है कि जो मनुष्य सत्य धर्म पर श्रद्धा न रखकर इधर उधर भटकता फिरता है वह जन्म जन्मान्तर में दुःख पाता है तथा शुद्ध धर्म के आचरण[1] के विना उसको यथेष्ट[2] वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है, इस लिये मनुष्य को द्विविधा को छोड़ कर सत्य धर्म पर पूरी श्रद्धा रखनी चाहिये, किसी भाषा-कवि ने ठीक ही कहा है कि:—

द्विविधा में दोनों गये, माया मिली न राम ।
सूजा सुधि पाई नहीं, घर आये थे राम ॥१॥

इस विषय का दृष्टान्त यह है कि:—

किसी समय सीता जी और रामचन्द्र जी में परस्पर वातचीत हो रही थी, उस समय सीता जी ने रामचन्द्र जी से प्रसंगानुसार यह कहा कि हे महाराज ! जहाँ माया का प्रचार होता है वहाँ आपका निवास नहीं हो सकता है क्योंकि आप और माया मे वैर है, रामचन्द्रजी ने कहा कि ठीक है; इस बात की परीक्षा की जावेगी, एक दिन रामचन्द्रजी साधु का वेष वना कर सूजा नामक एक वनिये के घर गये, जो कि एक ग्राम में रहता था और उससे कहा कि अब वर्षाकाल आ गया है; हम तुम्हारे घर पर चौमासा करेंगे, तव सूजा ने कहा कि आप कृपा कर के अवश्य मेरे घर ठहरो, मैं भी सत्संग करूंगा, तव उसकी आज्ञा लेकर रामचन्द्र जी ने वहाँ निवास किया, कुछ समय के पश्चात् माया योगिन का वेश बना कर वीणा को बजाती हुई सूजा के घर पहुँची तथा मधुर स्वर से सूजा को उसने हरि भजन सुनाये, सूजा उन्हें सुन कर वहुत प्रसन्न हुआ, भजन गा चुकने के पश्चात् योगिन ने कहा कि मुझको प्यास लगी है थोड़ा सा जल पिलाओ, यह सुन कर सूजा वनिये ने शुद्ध जल लाकर उस योगिन को दिया, तब योगिन ने अपने पास से रत्नजटित सोने का कटोरा

१—व्यवहार । २—मनचाही ।

निकाला और उसमें भर कर जल को पिया तथा जल पी लेने के बाद उस कटोरे को फेंक दिया, यह देख कर सूजा बोला कि "हे माता ! इस अमूल्य वस्तु को तुमने क्यों फेंक दिया", तब योगिन कहने लगी कि "एक वार जिस वर्तन में खाना पीना कर लिया हो उस वर्तन में मैं दुबारा खाना पीना नहीं करती हूं", इस बात को सुन कर सूजा ने मन में सोचा कि यह योगिन यदि कुछ काल तक मेरे घर में निवास करे तो मेरा दरिद्र दूर हो जावे, यह विचार कर सूजा ने विनय पूर्वक योगिन से निवेदन किया कि "हे मातेश्वरी ! आप कुछ समय तक यहीं रहो", तब योगिन बोली कि "जिस ग्राम में साधु रहता है उस ग्राम में साध्वी को रहना उचित नहीं है; इसलिये मैं तुम्हारे यहाँ नहीं रह सकती हूँ", इस बात को सुन कर सूजा रामचन्द्र जी के पास आया और कहने लगा कि, "आप कृपा कर कहीं अन्यत्र निवास करो, यहाँ माई साहब रहेंगी", तब रामचन्द्र जी ने कहा हम साधु हैं; हम चौमासे में कहाँ जा सकते हैं, तुम्हारी आज्ञा से ही हम यहाँ पर रहे हैं, तब सूजा बोला कि अब मेरी आज्ञा नहीं है, इसलिये आप अन्यत्र पधारिये, इस बात को सुन कर रामचन्द्र जी ने वहाँ से कूंच किया, तब सूजा माया के पास आकर बोला कि हे महासती ! अब आप मेरे यहाँ निवास करो, योगिनी उस व्यवहार को जान कर बनिये से बोली कि तू बड़ा नालायक़ है कि जो तूने बैठे हुए साधु को चौमासे में उठा दिया, इस व्यवहार से तू बड़ा दोषी हुआ है, हम तुझ दोषी के यहाँ नहीं रहेंगी, क्योंकि मुझसे अच्छा जब कोई और आवेगा तब तू मुझे भी उठा देगा, इस बात को कह कर माया ने अपना रास्ता लिया, थोड़े समय के पश्चात् जब सूजा को मालूम हुआ कि रामचन्द्र जी साधु के वेष में मेरे घर पर आये थे और मैंने माया के लोभ में पड़ कर उन्हें उठा दिया, तब वह पश्चात्ताप कर कहने लगा कि–"सूजा सुधि पाई नहीं, घर आये थे राम ॥
द्विविधा मे दोनों गये माया मिली न राम" ॥१॥

यह दृष्टान्त दर्शन के विषय में कहा गया है, उपनय[1] यह है कि जिस मनुष्य की श्रद्धा डांवाडोल रहती है अर्थात् किसी पर भी विश्वास नहीं होता है वह सूजा बनिये के समान होता है, अर्थात् सूजा के समान उसको कुछ भी लाभ नहीं होता है, जिस मनुष्य के पास सम्यग् दर्शन नहीं होता है वह भव भवान्तर[2] में दुःखी रहता है, किसी कवि ने ठीक कहा है कि—

चाहें निरञ्जन बन तप करिये, बिन समता दुख पाओगे।
दर्शन बिन गोता खाओगे, खाओगे पछताओगे॥
दर्शन बिन गोता खाओगे ॥१॥

देखो ! दर्शन के बिना आत्मा की भी सिद्धि नहीं हो सकती, इसलिए दर्शन की विशुद्धि के द्वारा मनुष्य को श्री जिन धर्म पर श्रद्धा करके आत्मा का कल्याण करना चाहिये ।

अब चारित्र के विषय में संक्षेप से कथन किया जाता है:—

"चर्यते इति चरित्रम्" इस व्युत्पत्ति के द्वारा चरित्र शब्द का यह अर्थ होता है कि जिसका व्यवहार किया जाता है उसको चरित्र वा चारित्र कहते हैं, तात्पर्य यह है कि संचित[3] कर्मों को रीता[4] करने का नाम चारित्र है, अर्थात् अनन्तभवान्तरों के सञ्चित जो शुभाशुभ कर्म हैं उनके निर्जरण का नाम चारित्र है, इसको संयम भी कहते हैं। संयम शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक यम् उपरमे धातु से बनता है, इसलिये इन्द्रियों के विषय विकारादि का जो हट जाना है अर्थात् उनमें प्रवृत्ति न करना है यही संयम शब्द का अर्थ है । आज इस पञ्चम काल में बहुत से लोग संयम को अंगीकार[5] तो कर लेते हैं परन्तु संयम शब्द के अर्थ को भी नहीं जानते हैं कि सयम किसको

१—दृष्टान्त की घटना का विषय। २—अनेक भवों में। ३—एकट्ठे किये हुए। ४—खाली। ५—स्वीकार ॥

कहते हैं, तो भला वे संयम का पालन कैसे कर सकते हैं ? पाँच महाव्रत, पाँच समिति तथा तीन गुप्ति, इन तेरहों को समष्टिरूप[1] में चारित्र नाम से कहा गया है, वास्तव में इन तेरहों का योग्य रीति से जो पालन करना है वही संयम का पालन करना है।

अब क्रमानुसार महाव्रतों के विषय में कुछ कथन किया जाता है—महाव्रतों के दो भेद हैं:—द्रव्य महाव्रत और भाव महाव्रत—जो पुरुष द्रव्य महाव्रत को स्वीकार करता है किन्तु भाव महाव्रत को स्वीकार नहीं करता है उसके आत्मा की शुद्धि नहीं होती है। प्रथम महाव्रत अहिंसा है—इसका पालन करने के लिये त्रस[2] और स्थावर[3], सूक्ष्म और बादर[4], संमूर्छिम[5] और गर्भज[6], पर्याप्त[7] और अपर्याप्त[8], इन सर्व जीवों पर समभाव[9] रखना चाहिये, सब पर दया भाव रखना चाहिये, अपने समान सब को देखना चाहिये; उनकी रक्षा के लिये प्रयत्न करना चाहिये[10], तात्पर्य यह है कि मन, वचन और शरीर के द्वारा किसी जीव की हिंसा नहीं करनी चाहिये, किसी जीव को किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये,[11] इस महाव्रत का पालन अत्यन्त दुष्कर है।

प्रायः आजकल देखा जाता है कि महाव्रतों के पालन को स्वीकार करके भी साधुनामधारी पुरुष अपनी स्थापना[12] करते हैं दूसरों की उत्थापना[13] करते हैं, दूसरों की कीर्त्ति को देख कर जलते हैं, दूसरों को

१—समूह रूप में। २—भयशील प्राणी। ३—स्थिति शील प्राणी। ४—स्थूल। ५—सम्मूर्छायुक्त। ६—गर्भ से उत्पन्न। ७—पर्याप्तियों से युक्त। ८—पर्याप्तियों से रहित। ९—समान प्रेम। १०—इस विषय में धर्मरुचि अनगार के चरित्र को देखना चाहिये। ११—मन, वाणी तथा शरीर से किसी को पीड़ा पहुँचाना अथवा किसी की वृत्ति में बाधा देना हिंसा का दुरुपयोग है, परन्तु परिणाम में होने वाले बड़े सुख या बड़ा लाभ पहुँचाने के विचार से एक बार थोड़े समय के लिये किसी को कष्ट दिया जावे तो वह हिंसा नहीं है। १२—अपने मन्तव्य की पुष्टि। १३—दूसरे के मन्तव्य का खण्डन।

कष्ट पहुँचाते हैं, "इसको वन्दन मत करो, इसको आहार पानी मत दो" इस प्रकार कह कर दूसरों का तिरस्कार करते हैं, इस प्रकार का कथन साधु को तो नहीं करना चाहिये, हां असाधु की बात दूसरी है कि वह चाहे जैसा भाषण करे, इसीलिये कहना पड़ता है कि इस प्रथम महाव्रत का पालन अति कठिन है, जो महापुरुष द्रव्य और भाव से इसका पालन करते हैं उनको धन्यवाद है तथा वारंवार नमस्कार है।

दूसरा महाव्रत सत्य भाषण अर्थात् मिथ्याभाषण का त्याग है, तात्पर्य यह है कि इस महाव्रत का पालन करने के लिये तीन करण और तीन योग के द्वारा चार प्रकार से मिथ्या भाषण का सर्वथा परित्याग करना चाहिये, इस महाव्रत का पालन बड़ा प्रभावशाली है, इस महाव्रत का भी पालन अति कठिन है, देखो! वसुराजा मिथ्या भाषण के कारण नरक में पहुँचा, वास्तव में मिथ्या भाषण का त्याग आत्म-हित का परम साधन है। सत्य भाषण के द्वारा यदि किसी अवसर विशेष में बड़ा अनर्थ उत्पन्न होता हुआ दीख पड़े तो ऐसे अवसर पर अपनी बुद्धि के बल से ऐसा भाषण करना चाहिये कि जिससे अनर्थ भी उत्पन्न न हो तथा मिथ्या भाषण भी न करना पड़े[1], कहते हैं कि अन्यमत का एक साधु था, वह संन्यासी बन गया, उसको धर्म का पालन करते २ बारह वर्ष व्यतीत हो गये थे, उसको मिथ्या भाषण का सर्वथा त्याग था; इसलिये लोगों ने उसका नाम "सत्य वक्ता" रख दिया था, एक दिन की बात है कि एक व्याध किसी हिरन के पीछे उसे पकड़ने के लिये दौड़ा, वह बेचारा हिरन घबड़ाता हुआ उस सत्य वक्ता की

१—जो प्राणियों का हितकर है वही सत्य है तथा जो प्राणियों का अहितकर है वह असत्य है इसलिये, झूठ बोल कर दूसरों को धोखा देना, हानि पहुँचाना या मानसिक कष्ट देना महापाप है और यही असत्य का दुरुपयोग है, परन्तु दुराचारियों से भले मनुष्यों की रक्षा करने से या लोक हित के लिये कभी झूठ बोलने का अवसर आ पड़े जिससे वास्तव में किसी को भी हानि पहुँचाने का भाव न हो तो वह असत्य का सदुपयोग होता है।

झोंपड़ी में घुस गया, पीछे से वह व्याध हिरन को तलाश करता हुआ सत्य वक्ता की झोपड़ी के पास आया और उससे पूंछने लगा कि महाराज ! हमारे भक्ष्य हिरन को क्या आपने देखा है, वह किधर गया? तब सत्य वक्ता ने सत्य भाषण के प्रभाव से उत्पन्न हुए बुद्धि-बलसे उसको यह उत्तर दिया कि हे भाई ! 'जो देखता है वह कह नहीं सकता है, जो कहता है वह देख नहीं सकता है,'[1] इस उत्तर को सुन कर व्याध चुप चाप चला गया, देखो ! सत्यवक्ता को इस उत्तर के देने से मिथ्याभाषण का पाप भी नहीं लगा और उस वेचारे पशु के प्राण भी बच गये।

साधु का कर्त्तव्य है कि दूसरे महाव्रत का पालन करने के लिये मिथ्या भाषण का सर्वथा त्याग करे। तीसरा महाव्रत अदत्तादान है, इसका पालन करने के लिये चोरी का सर्वथा त्याग करना चाहिये, अर्थात् न दी हुई वस्तु का द्रव्य और भाव के द्वारा ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि चौर्य कर्म वहुत ही बुरा है[2] साधुको इसका सर्वथा त्याग करना चाहिये, क्योंकि चौर्य कर्म का परिणाम बड़ा भयङ्कर होता है और इससे दोनों लोक बिगड़ते हैं[3]।

१—तात्पर्य यह है कि नेत्र देखते हैं वे कह नहीं सकते हैं तथा वाणी बोलती है परन्तु वह देख नहीं सकती हैं, "गिरा अनयन नयन विनु वानी" अर्थात् वाणी के नेत्र नहीं हैं और नेत्रों के वाणी नहीं है। २—चोरी, पाँच प्रकार की होती है, इसका स्वरूप दूसरे ग्रन्थों से जान लेना चाहिये। ३—दूसरों के द्रव्यादि पदार्थ हरण करने की इच्छा न करना तथा विना हक़ के कोई पदार्थ न लेना अर्थात् अपने परिश्रम के द्वारा उपार्जन किये हुए द्रव्य पर ही अपना स्वत्त्व समझने में सन्तोष न कर दूसरों के परिश्रम से उपार्जन किए हुए धनादि पदार्थों के पाने की आशा रख कर आलसी और निरुद्यमी न हो जाना तथा धनादि पदार्थों का संग्रह कर दूसरों के उपयोग में न आने देने और अपनी आवश्यकताओं को अधिक वढ़ा उनमें धनादि पदार्थों का अनुचित रूप से खर्च कर दूसरों से धनादि लेने का प्रयत्न करने तथा दूसरों की वास्तविक आवश्यकताओं के पूरा होने में बाधक होने के भाव न रखना अस्तेय है, किंतु अस्तेय से यह तात्पर्य नहीं है कि पैतृक सम्पत्ति आदि प्रारब्ध से परिश्रम के विना तथा दूसरों के हक़ छीने विना प्राप्त हुई सम्पत्ति को त्याज्य मान कर छोड़ बैठना अस्तेय का सच्चा उपयोग नहीं है।

एक दृष्टान्त है कि किसी राजा का एक मोदी था, वह तमाम पलटन अर्थात् सेना के लोगों को खाने पीने के पदार्थ दिया करता था, वह बड़ा सत्यवादी, धर्मात्मा और चौर्य कर्म का परित्यागी था, इस लिये वह किसी को कभी कम तौल कर कोई वस्तु नहीं देता था, अतएव सब लोगों को और राजा को पूरी प्रतीति[1] थी और सब ही उसका विश्वास करते थे, एक दिन श्रावण की तीज आई, यह त्यौहार प्रायः स्त्रियों का है, उस रोज मोदी की स्त्री बोली कि आज सामान ला दो तो मैं घेवर बनाऊंगी, तब मोदी ने कहा कि मेरे पास खर्च की गुंजाइश नहीं है, इसलिए मैं घेवरों का सामान नहीं ला सकता हूँ, यह सुनकर उसकी स्त्री ने कहा कि यदि आपके पास खर्च की गुंजाइश नहीं है तो आज फौज को जो सामान तौलें उसमें थोड़ा २ कम तौल देना, ऐसा करने से अपना काम बन जायगा, तब मोदी बोला कि मैंने आज तक कभी चोरी नहीं की है, इसलिये मैं ऐसा नहीं कर सकता हूँ यह सुनकर उस स्त्री ने रूखे स्वर[2] से कहा कि ऐसे क्या साधु बन गये हो जो एक दिन कुछ कम सामान तौलने में तुम्हें इतनी लज्जा आती है, गृहस्थ को तो समय के अनुसार सब काम करने पड़ते हैं, बेचारा मोदी स्त्री की बातों में आगया और उसने उस दिन सब को थोड़ा २ सामान कम तौलकर दे दिया और अपने घेवरों के लायक सामान निकाल लिया, घर लाकर स्त्री को सौंप दिया, घेवर बनाये गये, स्त्री ने खाये, बच्चों ने खालिये तथा मोदी जी के हिस्से के दो घेवर रख दिये गये, दैवयोग से उसी वक्त मोदी जी का जमाई आगया और मोदी जी के लिये रक्खे हुए दोनों घेवरों को वह खागया, मोदी जी के लिए कुछ भी नहीं रहा, अब फौज के लोगो का हाल सुनिये—फौज के लोगों ने उस दिन मोदी जी से लिये हुये सामान को कम जँचने के कारण तौला, तो वास्तव मे वह कम निकला, सब लोगों ने जाकर राजा से निवेदन किया, राजा भी इस बात को सुनकर बड़ा क्रुद्ध[3]

१—विश्वास । २—आवाज़ । ३—ख़फ़ा ।

हुआ और उसी समय मोदी जी को बुलवाकर तथा धमका कर ताड़ना देना शुरू किया, तब मोदी जी ने अपने इस अपराध के लिये राजा से क्षमा मांगी और एक दोहा पढ़ा—

मोदी जी के मार पड़े छे, घर का घेवर खाया।
परभव की तो ज्ञानी जाने, इस भव में दुख पाया॥ १॥

देखो ! चोरी करने से मोदी जी को क्या फल मिला, इसलिये साधु को तीन करण और तीन योग से चोरी का त्याग करना चाहिये। चौथा महाव्रत ब्रह्मचर्य अर्थात् मैथुन त्याग है, इस व्रत का पालन करने के लिये मन और इन्द्रियों का दमन कर तथा स्वाध्याय और तप में संलीन होकर शील का पालन करना उचित है, ब्रह्मचर्य की बत्तीस उपमायें हैं, नौ बाड़े हैं, तथा अठारह हज़ार शीलाङ्गरथ धारायें हैं, मन और इन्द्रियों के दमन के बिना तथा तपस्या के बिना इसका पालन कदापि[1] नहीं हो सकता है, जैसे मनुष्य को जब ज्वर चढ़ता है तब वह ज्वर लंघन के बिना शान्त नहीं होता है, इसी प्रकार काममद रूपी ज्वर तपस्या रूपी लंघन के बिना शान्त नहीं हो सकता है, इस विषय में एक दृष्टान्त है कि एक साहूकार की लड़की कुँवारी थी, युवावस्था को प्राप्त हो गई थी, एक दिन वह महल के झरोखे पर बैठी थी कि इतने में नीचे की तरफ़ उसी मार्ग से एक छैल छबीला युवा पुरुष जा रहा था, उस पुरुष को देखकर उस लड़की को काममद उत्पन्न हुआ, उसने दासी को बुलाकर कहा कि—इस पुरुष को जल्दी लाओ नहीं तो मैं अपने प्राणों का त्याग करदूंगी, यह सुन कर दासी ने कहा बाईजी ! ऐसा मत करो, शील का भंग करने से आत्मा नरक का भागी होता है, देखो शास्त्र में कहा कि—

वरं प्राण परित्यागो न तु शीलस्य खण्डनम्।
प्राणत्यागे क्षणं दुःखं, शीलभङ्गे भवान्तरे॥ १॥

१—कभी।

अर्थात् प्राणों का त्याग करना श्रेष्ठ है, परन्तु शील का खण्डन करना अच्छा नहीं है, क्योंकि प्राणों का त्याग करने मे क्षण भर दुःख होता है, परन्तु शील का भंग करने से इस भव[1] और परभव[2] में भी दुःख होता है[3] ॥ १ ॥

इस प्रकार उस दासी ने बहुत कुछ उपदेश दिया, परन्तु उस पर दासी के उपदेश का कुछ भी असर नहीं हुआ और वह वारंबार उससे उस पुरुष को लाने का हठ करने लगी, तब दासी ने मन में सोचा कि यदि मैं इसका कहना नहीं मानूंगी तो बुरा परिणाम[4] होगा— और यदि कहना मानूंगी तो इसके लोक और परलोक दोनों बिगड़ेंगे, इसलिये किसी युक्ति के द्वारा इस अनर्थ को रोकना चाहिये, यह विचार कर वह दासी महल से नीचे उतर कर जिधर वह पुरुष गया था उधर ही चलदी, थोड़ी देर घूमघाम कर वापिस आगई और साहूकार की कन्या से बोली कि उस पुरुष ने यह कहा है कि तुम तीन दिन का तेला[5] करो चौथे दिन मैं आकर तुम से मिलूंगा, कन्या ने इस बात को मानकर तेला करना शुरू किया, तीसरे रोज उस कन्या का मन भूख से बहुत घबड़ाया और वह दासी से बोली कि मुझे भूख बहुत जोर से लगी है, मेरे प्राण निकलते हैं, यह सुनकर दासी ने कहा कि बाईजी ! आज तीसरा दिन है अब थोड़े ही समय का कष्ट है, कल चौथा दिन है, कल पारणा करलेना, चौथा दिन आगया-लड़की व्याकुल वो हो ही रही थी, सवेरे ही दासी को पुकार कर कहा कि मेरे लिये भोजन लाओ यह सुन कर दासी बोली कि उस पुरुष के आने पर

१—लोक। २—परलोक। ३—नीतिशास्त्र में कहा है कि—वर विन्ध्याटव्यामनशनतृषार्त्तस्य मरणम्। वरं सर्पाकीर्णे तृणपिहित कूपे निपतनम्। वरं गर्त्तावर्ते गहन जल मध्ये विलयनम्। न शीलाद् विभ्रंशो भवतु कुलजस्य श्रुतवत ॥१॥ अर्थात विन्ध्यवन में भूख और प्यास से पीड़ित होकर मनुष्य का मरजाना अच्छा है, सर्पों से युक्त तथा घासफूस से भरे हुए कुए में गिरना अच्छा है तथा अतिगहन जल में डूब कर मरना अच्छा है परन्तु ज्ञानवान् कुलीन पुरुष का शील से डिगना अच्छा नहीं। ४—फल, नतीजा। ५—तीन दिन का उपवास।

भोजन करना, यदि पहिले ही भोजन करलोगी तो वह पुरुष नहीं आवेगा, लड़की बोली कि इस समय मुझे पुरुष की इच्छा नहीं है; किन्तु भोजन की इच्छा है, इसलिये मुझे शीघ्र भोजन दे, नहीं तो मेरे प्राण पखेरू इस शरीर रूपी पींजरे से निकल कर प्रयाण[1] कर जावेंगे-लड़की की घबड़ाहट को देखकर दासी ने उसे पारणा कराया, फिर दासी ने लड़की के माता पिता से कहकर उसका विवाह करा दिया, देखो ! उस लड़की ने तीन दिन का तेला किया था, ऐसा करने से उसका काम मद रूपी ज्वर उतर गया तथा उसका शील भंग नहीं हुआ, इस दृष्टान्त से यह शिक्षा मिलती है कि तपस्या के विना ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो सकता है, इसलिये ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये तपस्या अवश्य करनी चाहिये—तथा उसीके बलसे सब प्रकार के मैथुन का परित्याग कर अखण्ड[2] ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये।

पाँचवाँ महाव्रत अपरिग्रह अर्थात् परिग्रह का त्याग है, इसके दो भेद हैं—

वाह्यपरिग्रह-त्याग तथा आभ्यन्तर परिग्रह-त्याग, इन में से वाह्य परिग्रह त्याग तो फिर भी सहज[3] है, परन्तु आभ्यन्तर परिग्रह-त्याग अति कठिन है, जहाँ तक साधु आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग नहीं करता है तब तक वह द्रव्य संयमी होता है, यह द्रव्य संयम जीव को अनन्त वार प्राप्त हो चुका है तथा प्राप्त होता रहता है, परन्तु इस (द्रव्य संयम) से आत्मा का उद्देश्य[4] पूर्ण नहीं हो सकता है, वास्तव में तो यह लोक-व्यवहार है, तात्पर्य यह है कि भाव चारित्र के विना जीव का उद्देश्य कभी पूरा नहीं होता है।

पुद्गलों में जो ममत्त्व बुद्धि है वही परिग्रह[5] है, शिष्य, शिष्या, भाण्ड, उपकरण, तथा श्रावक श्राविका में अथवा क्षेत्र में जो ममत्त्व

१—कूच । २—पूर्ण ३—सुगम, सीधा । ४—गरज, मकसद् । ५—ससार के व्यवहार और पदार्थ मेरे हैं या मेरे लिये हैं, इस तरह की भावना नहीं रखना चाहिये, क्योंकि ससार का सब दृश्य प्रकृति का खेल है और अनित्य एव नाशवान् है, इसलिये अपने शरीर आदि से लेकर सब पदार्थों में ममता बुद्धि को नहीं रखना चाहिये ।

करना[1] है वह भाव चारित्र का लक्षण नहीं है, भाव चारित्र के पालन के विना कोई अपने मनमें अपने को उत्कृष्ट भले ही मान बैठे, परन्तु जब तक ज्ञानी महाराज हुण्डी नहीं सिकारेंगे तब तक हुण्डी को खोटी मानना चाहिये, रागरागिनी सुनकर यदि सहस्रों मूर्ख सराहना करने लगें या "खमा, खमा" की पुकार करें तो उससे क्या लाभ है, इस सराहना से तथा उक्त खमा खमा की पुकार से आत्मा का कल्याण कभी नहीं हो सकता है, क्योंकि ममत्व का सर्वथा त्याग करने से ही आत्मा का कल्याण होता है, इसलिये वाञ्छा[2] को बिल्कुल ही निर्मूल कर देना चाहिये, साधु को उचित है कि जब उसने द्रव्य से गृह का त्याग किया है तो भाव से भी उसे गृह का त्याग करना चाहिये, तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार वह द्रव्य से अनगार[3] बना है उसी प्रकार उसे भाव से भी अनगार बनना चाहिये, केवल द्रव्य से अनगार बनकर दन्त कड़ाकड़ करने से आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता है, अनेक साधु साध्वी शास्त्रो का अध्ययन करते हैं तथा गृहस्थों को राग, द्वेष, ईर्ष्या तथा अठारह पाप स्थानकों के त्याग का उपदेश भी देते हैं परन्तु शोक का विषय तो यह है कि आप राग द्वेषादि में मग्न रहते हैं, किसी ने ठीक कहा है कि—

> कहते हैं करते नहीं, मुख के बड़े लबार ।
> काला मुखड़ा होयगा, साँई के दरबार ॥१॥

खेद का विषय केवल इतना ही है कि अनेक अनगार नामधारियों की जैसी कहनी है वैसी रहनी नहीं है, यदि कहनी के समान रहनी हो जावे तो शीघ्र ही संसार सागर से निस्तार[4] हो जावे, क्योंकि गुण के विना केवल नाम मात्र से कुछ कार्य सिद्धि नहीं होती है, इस विषय में एक दृष्टान्त है कि एक राजा था, उसने अपने सेना बल से

१—यह मेरा शिष्य है, यह मेरी शिष्या है इत्यादि । २—इच्छा, अभिलाषा । ३—गृहरहित । ४—छुटकारा ।

सब राजाओं को जीत लिया, तब उसने अभिमान में आकर अपना नाम "सर्वजीत" रख लिया, सब लोग भी उसे सर्वजीत ही कहने लगे, वह राजा जब अपनी माता के पास भोजन करने को गया तब माता ने उससे उसका प्रथम नाम लेकर ही बातचीत की, किन्तु "सर्वजीत" कह कर बातचीत नहीं की, तब उस राजा ने एक दिन माता से नम्रता पूर्वक कहा कि "हे माता! मैंने अपने बलसे सब राजाओंको जीत लिया है; इसलिये अब मैंने अपना नाम "सर्वजीत" रक्खा है और सब लोग भी मुझे इसी नाम से सम्बोधन करते हैं, क्या आप मेरे इस नाम से वाकिफ़ नहीं हैं, जो आप मुझे पहिले नाम से ही सम्बोधन करती हैं "? माता ने आश्चर्य से युक्त होकर कहा कि—ओ हो! तुम्हारा यह नाम किस मूर्ख ने रख दिया है और तुमने भी किस मूर्ख के कहने से यह नाम स्वीकार किया है, अरे भोले पुत्र! तूने अपने से निर्बल राजाओं को तथा गरीबों को जीता है, इनके जीतने से "सर्वजीत" नाम सार्थक नहीं हो सकता है, प्रथम तू अपने मनको जीत, पीछे पाँचों इन्द्रियों को जीत और तदनन्तर चार कषायों को जीत, जिस दिन तू इन दशों को जीत लेगा उस दिन तेरा नाम "सर्वजीत" सार्थक हो सकेगा, माता के इस उपदेश को सुनकर उसने उसी समय संसार का त्याग कर मन आदि का निग्रह कर अपने सर्वजीत नाम को सार्थक किया, इसलिये गुण सम्पन्न नाम से ही कार्य सिद्धि होती है, औरों के विषय में क्या कहा जावे, मैं स्वयं कहनी के अनुसार रहनी को नहीं निर्वाहित कर रही हूं, इस दशा में मैं दूसरों को क्या उपदेश दे सकती हूं, कहने का तात्पर्य[1] यहाँ पर केवल इतना ही है कि बड़े २ विद्वान् भी प्रायः कहनी के समान अपनी रहनी को बनाने की चेष्टा नही करते हैं और उन्हें आत्म-दोष लेश मात्र भी नहीं दीख पड़ते हैं, यह बड़े ही पश्चात्ताप[2] का विषय है।

अन्य मत की एक कथा है कि—किसी देश के बादशाह ने राज्य का त्याग कर फ़क़ीरी लेली तथा, अपने देश को छोड़कर अन्य देशों में

१—मतलब। २—पछतावे।

विचरने लगा, वह घूमते २ एक नगर में पहुँचा तथा रात्रि के समय भिक्षा के लिये घूमने लगा, एक दिन वह रास्ते में जा रहा था; उस समय चन्द्रमा की स्वच्छ[१] चाँदनी खिल रही थी, एक मनुष्य ने उसी सड़क पर पान खाकर थूका था तथा उसमें कफ़ भी आगया था, अतः[२] एक जगह पर वह गोलाकार सा हो गया था, पान की पीक के साथ में मिलने के कारण वह लाली दे रहा था, वे फकीर साहब जब उस मार्ग से धीरे २ जा रहे थे तब उनकी दृष्टि उस खखार के गोले पर पड़ी, उसे देखकर उन्होंने मनमें सोचा कि यह किसी जौहरी का लाल गिर पड़ा है, फिर मनमें विचार किया कि मुझे तो इसकी जरूरत नहीं है, इसे लेकर किसी गरीब को देदूंगा कि जिससे उसका भला हो जावेगा, यह विचार कर उसको उठाने के लिये जब हाथ डाला तो उनका हाथ खखार में सन गया, उस समय वहाँ एक और भी चतुर[३] पुरुष खड़ा था; उसने इस व्यवहार को देख कर एक दोहा सुनाया:—

सोला से हुरमा तजी, अरु सखियन को साथ।
माया ममता ना तजी, पड़ो पीक पर हाथ ॥१॥

इस दृष्टांत का उपनय[४] यही है कि इच्छा के त्याग के बिना साधु का पांचवें महाव्रत का पालन कभी पूर्ण नहीं हो सकता[५] है, इसलिए मूल गुण स्वरूप पांच महाव्रतों का पालन विशुद्ध रीति से करना चाहिये।

१—साफ, निर्मल। २—इसलिये। ३—होशियार। ४—दार्ष्टान्तिक विषय में योजना। ५—प्रत्येक धर्मशील पुरुष को कोई भी कार्य किसी फल की आशा से नहीं करना चाहिये, किंतु अपना कर्त्तव्य समझ कर करना चाहिये। देखो गीता में कहा है कि—आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठ समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत। तद्वत कामा यं प्रविशन्ति सर्वे, स शाति माप्नोति न काम कामी ॥१॥ (अ० २-७०) अर्थात् जिस प्रकार सदा पूर्णता से युक्त तथा अचल प्रतिष्ठावाले समुद्र में चारों ओर से जल के आने पर भी उसकी शाति का भंग नहीं होता है उसी प्रकार सब कामनाओं के प्राप्त होने पर भी जिसकी शांति का भंग नहीं होता है केवल उसे ही सच्ची शाति प्राप्त होती है किन्तु कामनाओं की आशा रखने वाले को सच्ची शाति प्राप्त नहीं होती है।

पाँच समिति तथा तीन गुप्ति हैं, इनके स्वरूप का संक्षेप से कथन किया जाता है ।

पहिली ईर्या समिति के चार भेद हैं–आलम्बन, काल, मार्ग और यतना, इन्हीं चारों के आश्रय को लेकर संयमी पुरुष ईर्या समिति का शुद्ध रीति से पालन कर सकता है, आलम्बन का तात्पर्य यह है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र से संयुक्त होकर इन्हीं के आलम्बन के द्वारा ईर्या की शुद्धि करनी चाहिये, काल की अपेक्षा से ईर्या शुद्धि के लिए दिन में शोध कर तथा रात्रि में पूंज कर गमन करना चाहिये, मार्ग की अपेक्षा से ईर्या शुद्धि के लिये–शुद्ध मार्ग पर गमन करना चाहिये, कुपथ गमन का त्याग करना चाहिये, क्योंकि विशुद्ध मार्ग गमन के बिना ईर्या शुद्धि नहीं हो सकती है, यतना के चार भेद हैं–द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव, इन में से द्रव्य यतना की अपेक्षा से ईर्या शुद्धि के लिये दृष्टि से अच्छे प्रकार देख कर चलना चाहिये, क्षेत्र यतना की अपेक्षा से ईर्या शुद्धि के लिए साढ़े तीन हाथ तक दृष्टि देकर चलना चाहिये, काल की अपेक्षा से ईर्या शुद्धि के लिये जहां तक गमन का काल हो वहां तक चलना चाहिये—तथा भाव की अपेक्षा से ईर्या शुद्धि के लिये उपयोग पूर्वक इन्द्रियो के शब्दादि विषयो का त्याग कर ईर्या समय में वाचना[1], पृच्छना[2], परावर्त्तना[3], अनुप्रेक्षा[4],तथा धर्म-कथा,[5] को नहीं करना चाहिये, देखो ! ईर्या शुद्धि के लिये शास्त्रीय आज्ञा तो पूर्वोक्त[6] है, परन्तु खेद का विषय है कि वर्त्तमान में इसका व्यवहार बहुत ही कम दृष्टिगोचर होता है, लोग दूसरों का तो छिद्र (दोष) निकालने को तैयार रहते हैं; परन्तु अपनी त्रुटियों और दोषों को नहीं

१—मार्ग में जाते समय किसी को वाँचना (पाठ-सम्था) न देवे । २—मार्ग में जाते समय प्रश्न आदि न करे । ३—मार्ग में जाते समय पढ़े हुए पाठ की पुनरावृत्ति वा चिंतन न करे । ४—मार्ग में जाते समय पढ़े हुए पाठ में उपयोग को न लगावे । ५—मार्ग में जाते समय किसी को धर्मोपदेश आदि भी न देवे । ६—पहिले कही हुई ।

देखते हैं; दूसरों को उपदेश देने में तत्पर रहते हैं, परन्तु अपने व्यवहार को विशुद्ध करने की चेष्टा नहीं करते हैं, यही तो एक बड़ी भारी कसर है, ईर्या शुद्धि के के बिना संयम का विधिवत्[1] पालन नहीं हो सकता है।

दूसरी भाषा समिति है, तात्पर्य यह है कि–भाषा को सर्वदा विचार कर बोलना चाहिए, कर्कश, कटु, कठोर, छेदन-भेदन कारी, तथा दूसरे के मर्म को प्रकट करने वाले वचन को नहीं बोलना चाहिये, यद्वा-क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य और भय आदि को उत्पन्न करने वाले वचन को नहीं बोलना चाहिये, एवं चार प्रकार की विकथा[2] का भी परित्याग करना चाहिये, संयम यात्रा के लिए इस दूसरी समिति का भी ठीक रीति से पालन करना चाहिये।

तीसरी—एषणा समिति है तात्पर्य यह है कि–स्थान, वस्त्र और आहार, इन तीनों निरवद्यों[3] का भोग करना चाहिये, पूर्वोक्त पदार्थों में यदि सोलह उद्गमादि दोष हों, सोलह उत्पादादि दोष हों तथा दश एषणादि दोष हों तो उनकी गवेषणा नहीं करनी चाहिये।

चौथी—आदान निक्षेप समिति है, इसका तात्पर्य यह है कि भाण्ड और उपकरण आदि व्यवहारोपयोगी वस्तुओं के ग्रहण[4] तथा निक्षेपण[5] में पूर्णतया यतना रक्खे, यथा समय उनकी प्रति लेखना करता रहे।

पांचवीं—परिष्ठापनि का समिति है, इसका तात्पर्य यह है कि–बड़ी नीति, लघुनीति, खखार, नासिका मल तथा शरीरमल आदि परिष्ठापन के योग्य जो पदार्थ हैं उनका परिष्ठापन शुद्ध स्थडिल पर करना चाहिये, इनके परिष्ठापन के विषय मे चार भंग कहे गये हैं और वे इस प्रकार हैं कि–जिस मार्ग में कोई मनुष्यआता तो न हो परन्तु दूर से देखता हो वहां परिष्ठापन नहीं करना चाहिये, जिस मार्ग में कोई मनुष्य आता तो हो

१—विधि पूर्वक। २—स्त्री कथा, देश कथा, राज कथा तथा भक्तपान कथा। ३—निर्दोष। ४—लेने। ५—रखने।

परन्तु देखता न हो वहाँ भी परिष्ठापन नहीं करना चाहिये, जिस मार्ग से कोई मनुष्य आता भी हो तथा देखता भी हो वहां भी परिष्ठापन नहीं करना चाहिये, किंतु जिस मार्ग में न तो कोई मनुष्य आता हो और न दूर से देखता हो वहाँ परिष्ठापन करना चाहिये, परिष्ठापन के विषय में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि–परिष्ठापन उस स्थान पर करना चाहिये कि जिस स्थान पर अपनी तथा पर[1] जीवों की हिंसा न हो, सम[2] भूमि पर परिष्ठापन करना चाहिये, पोली भूमि मे परिष्ठापन नहीं करना चाहिये, जो भूमि विस्तीर्ण[3] हो, नीचे चार अंगुल तक अचित हो, मूसों के बिल से रहित हो और द्वीन्द्रियादि त्रस प्राणियों से तथा बीज से रहित हो, ऐसी भूमि पर मल मूत्रादि का परिष्ठापन करना चाहिये, इस समिति का भी पालन अति कठिन है, जो सच्चा साधु होता है वही इसका पालन करता है, जो लोग पात्र में लघु नीति वा बड़ी नीति करके उसका मार्ग में परिष्ठापन करते हैं वे लोग समिति के स्वरूप से अज्ञ[4] हैं, कहीं २ एक पात्र मे दस साधु वा साध्वी एक दम मात्रा करते हैं, ऐसा करना किस सूत्र के कथन के अनुकूल है ? हमारा कथन केवल यही है कि सूत्र की आज्ञा के अनुकूल समितियों का पालन करना चाहिये कि जिससे संयम पालन विशुद्ध रहे ।

गुप्ति तीन प्रकार की हैं—मनोगुप्ति, वचन गुप्ति तथा काय गुप्ति, इनमें से प्रथम मनोगुप्ति चार प्रकार की है—सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, मिश्रमनोयोग, और व्यवहार मनोयोग, मनोगुप्ति के पालन के लिये मन से बुरे संकल्पों और विकल्पों को नहीं करना चाहिये तथा मन के द्वारा भी किसी को पीड़ा उत्पन्न करने का विचार नहीं करना चाहिये, किसी ने कहा है कि—

तन को योगी सब करैं, मन को विरला कोय ।
सहजहि मुक्ती पाइये, जो मन योगी होय ॥१॥

१–दूसरे २–बराबर ३–लम्बी चौड़ी ४–अनजान ।

सत्य है मन को योगी किये विना आत्मा का उद्देश्य[१] पूरा नहीं होता है, और न साधु नाम रख कर ही आत्मा का उद्देश्य पूरा होता है ।

मन के मते न चालिये, मन का मता अनेक ।
जो मन पर असवार है, वह साधू कोई एक ।१।

मन को वश में रखने वाला हज़ारों में कोई एक ही साधु दीखता है, जिसने अपने मन को वश में नहीं किया है उसको साधुता से क्या लाभ है ? अतः[२] साधु को उचित है कि मनोगुप्ति का शुद्ध रीति से पालन करे[३] ।

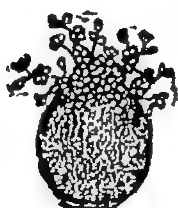
दूसरी वचनगुप्ति भी चार प्रकार की है—इस वचन गुप्ति का पालन करने के लिये चार विकथाओं[४] का त्याग कर शुद्ध वाक्य बोलना चाहिये, किसी की चुगली[५] नहीं करनी चाहिये, किसी के गुप्त मर्म का प्रकाश नहीं करना चाहिये, देखो ! जिह्वा इन्द्रिय के सिवाय शेष चार इन्द्रियों का ज़ाबता (अवरोध) नहीं है, किंतु जिह्वा इन्द्रिय के लिये अनेक अवरोध किये गये हैं, देखिये—उसके अवरोध के लिये दो ओष्ठों का कोट बन्द है, बत्तीस दान्तों का उस पर रातदिन पहरा लगा रहता है, मुखरूपी घर के भीतर बन्द की गई है, तो भी वह चंचलता के कारण लपका करती है, खाकर बिगाड़ती है

१—गरज, मक़सद । २—इसलिये । ३—शास्त्रानुकूल मर्यादा पूर्वक मन को वश में रखकर तथा आशक्ति रहित होकर एवं सात्त्विक भाव से राग द्वेष रहित होकर यथा लाभ में सन्तुष्ट रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही मनोनिग्रह का लक्षण है । ४—स्त्री कथा, देश कथा राज कथा तथा भक्तपान कथा इन चारों विकथाओं को । ५—दूसरों की मान प्रतिष्ठा आदि में हानि पहुंचाने के भाव से निन्दा करना चुगली कहलाती है ।

तथा बोलकर बिगाड़ती है, इसलिये इस जिह्वा इन्द्रिय को वश में करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये[१]।

तीसरी कायगुप्ति है, इसका तात्पर्य[२] यह है कि—चलते, फिरते, उठते, बैठते शरीर को यतना में रखना चाहिये, अर्थात् शरीर सम्बन्धिनी किसी प्रकार की क्रिया में अयतना[३] नहीं होनी चाहिये[४]।

पाँच महाव्रत, पाँच समिति तथा तीन गुप्ति, इन तेरहों को समष्टिरूप[५] में चारित्र नाम से कहा गया है जैसा कि प्रथम लिखा जा चुका है, इस चरित्र का उत्तम रीति से पालन करना आत्मा के लिये कल्याणकारी है।



१—गीता में कहा है कि—अनुद्वेग करं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्, स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयंतप उच्यते॥१॥ (अ० १७—१५) अर्थात् स्वयं अपने को तथा अन्य लोगों को जिन वचनों से उद्वेग उत्पन्न हो अर्थात् जिनमें अश्लीलता, अपमान, व्यंग, वक्रता, भय और उपालम्भ आदि के भाव न हों, ऐसे सत्य प्रिय और हित के वचन बोलना तथा पठन-पाठन करना, यही वाणी का तप है। २—अभिप्राय, मतलब। ३—प्रमाद, असावधानी। ४—गीता में कहा है कि—देवद्विज गुरु प्राज्ञ पूजन शौच मार्जवम्। ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शारीरं तप उच्यते॥१॥ (अ० १७—१४) अर्थात् दैवी सम्पत्ति से युक्त महानुभावों, ब्रह्मवेत्ता गुरु तथा विद्वानों का पूजन (सेवन) करना, पवित्रता, सरलता ब्रह्मचर्य पालन और अहिंसा, यह शारीरिक तप कहलाता है॥१॥ ५—समुदाय रूप में।

द्वितीय-प्रकरण।

१–धर्म-साधन-स्वरूप।

दान, शील, तप, और भावना, ये चार धर्म के साधन हैं–अर्थात् इन्हीं चारों मुख्य साधनों के द्वारा धर्म का सेवन हो सकता है, अतः पूर्वोक्त चारों साधनों का सेवन अच्छे प्रकार से करना चाहिये कि जिससे धर्म का उपार्जन होकर आत्मा का दोनों लोकों में कल्याण हो।

अब क्रमानुसार इन चारों के विषय में संक्षेप से कथन किया जाता है—

१–दान–"डुद ञ् दाने" इस धातु से ल्युट् प्रत्यय करने से दान शब्द की सिद्धि होती है, दान शब्द का साधारण अर्थ देना है, तात्पर्य यह है कि अपने पदार्थ के द्वारा दशाविशेष में आवश्यकता के अनुसार दूसरे को लाभ पहुँचाना दान कहलाता है, इसका व्यवहार करने से अपनी इच्छा का उपराम होता है तथा दूसरे की तृप्ति होती है–इसलिये दशाविशेष में दूसरे की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये यथाशक्ति दान अवश्य करना चाहिये,[1] भाषा के एक कवि ने कहा है:–

१—गीता में कहा है कि–दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे देशे काले च पात्रे च, तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥१॥ (अ० १७-२०) अर्थात् दान देना अपना कर्त्तव्य है ऐसा भाव मनमें रख कर प्रत्युपकार की इच्छा न रख कर अर्थात् उस दान के बदले में कोई कार्य करवाने, किसी प्रयोजन की सिद्धि, मान, कीर्ति अथवा इस लोक के वा परलोक के किसी फल की इच्छा न रख कर देश, काल और पात्र को देखकर दान देना चाहिये, यही सात्त्विक दान माना गया है ॥१॥

दे दे दे फिर पावेगा न ऐसी देह,
न जाने यह जीव कौन योनि जावेगा।
आवेगा गगन से यम, लेने न देगा एक दम,
नगीना न चलेगा संग, नंगा ही चला जावेगा॥१॥

विषयों से अपने मन और इन्द्रियो का उपराम कर निज पदार्थ के द्वारा दूसरे के क्लेश को दूर करने से ही मनुष्य दया का पालन कर सकता है।

दान का बड़ा भारी महत्त्व है, इस दान के प्रभाव से अनन्त जीव भवसागर से पार हो गये हैं, दान के ही प्रभाव से शालिभद्र ने उत्तम ऋद्धि को प्राप्त किया था तथा दान के ही प्रभाव से मुमण सेठ को ऋद्धि की प्राप्ति हुई थी।

दान तीन प्रकार का है—सुपात्रदान, कुपात्रदान और अपात्रदान, इनमें से प्रथम सुपात्रदान के कई ग्रन्थों में तीन भेद लिखे हैं—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य, इनमें से तीर्थङ्करों का जो दान है वह उत्कृष्ट कहलाता है, साधु मुनिराज का दान मध्यम कहलाता है तथा प्रतिमाधारी का दान जघन्य माना गया है, कुपात्र दान के अनेक भेद हैं, अन्धे, लूले, लंगड़े आदि को देना ग्रन्थों में अपात्रदान नाम से कहा गया है।

दिगम्बर मत के ग्रन्थों में दान के कुल बारह भेद कहे हैं—वे इस प्रकार हैं कि—जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट, ये तीन भेद मुख्य हैं—जघन्य के तीन भेद हैं—जघन्य जघन्य, जघन्य मध्यम तथा जघन्योत्कृष्ट, मध्यम के भी तीन भेद हैं—मध्यम जघन्य, मध्यम—मध्यम तथा मध्यमोत्कृष्ट, इसी प्रकार उत्कृष्ट के तीन भेद हैं—उत्कृष्ट-जघन्य, उत्कृष्ट-मध्यम तथा उत्कृष्टोत्कृष्ट, उत्कृष्टोत्कृष्ट दान तीर्थङ्कर महाराज का है, उत्कृष्टमध्यम दान गणधर का है तथा उत्कृष्ट-जघन्य दान साधु का है, मध्यमोत्कृष्ट दान प्रतिमाधारी का है, मध्यम-मध्यम दान बारह व्रतधारी का है तथा मध्यम-जघन्य दान-न्यून त्याग व्रत करने वाले का है, जघन्योत्कृष्ट दान चौथे गुणस्थानक वाले क्षायिक सम्यक्त्व वाले का

है, जघन्यमध्यम दान क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वाले का है तथा जघन्य-जघन्य दान सास्वादन वाले का है।

ठाणाङ्ग सूत्र में दान के दश भेद कहे हैं, उनमें से अभयदान को सब से उत्तम कहा[1] है, इस विषय में एक कविने भी कहा है कि-

"जिन जीवन को अभयदान दिया तो और का दान दिया न दिया।"

सत्य है अभयदान के समान दूसरा दान नहीं है। दान के महत्त्व को जान कर प्रत्येक मनुष्य को यथा शक्ति दान का व्यवहार अवश्य करना चाहिये[2]:—

दारिद नाशक[3] दान है, सम्पति दानहिं होय।
दानहिं कीरति होत है, अपजस दूरहिं होय ॥
शत्रु सज्जन होत है, सज्जन वशमें थाय[4]।
देवादिक रक्षा करत, दान स्वर्ग ले जाय ॥२॥

दान का महत्त्व शास्त्रों में बहुत कुछ कहा गया है, वहाँ देख लेना चाहिये, विस्तार के भय से अब यहाँ पर उसका उल्लेख नहीं किया जाता है।

२-शील-धर्म का दूसरा साधन शील है-इसका पालन करने से उत्तम आनन्द की प्राप्ति होती है, शील के विषय में ३२ उपमायें

१—नीति शास्त्र में भी कहा है कि-न गोप्रदान न सुवर्णदानम्। न चान्न-दानं न मही प्रदानम् ॥ यथा वदन्तीह महाप्रदानम्। सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम् ॥१॥ अर्थात् इस संसार में न तो वैसा गौ का दान है, न सुवर्ण का दान है, न अन्न का दान है तथा न पृथ्वी का दान है जैसा कि सब दानों में सबसे बड़ा दान अभय दान है ॥१॥ २—अपनी आमदनी का कमसे कम दशवाँ भाग दान अर्थात् लोकोपयगी पुण्य कार्य में अवश्य लगाना चाहिये- स्मरण रखना चाहिये कि दान की योग्यता देय पदार्थ की मात्रा पर नहीं समझी जाती है किन्तु दाता के भाव पर समझी जाती है। ३—दरिद्रता का नाश करने वाला। ४—होता है।

कही गई हैं, जो मनुष्य मन, वचन और शरीर से शील का पालन करता है उसे अतुल सुख की प्राप्ति होती है, शील पालन का ही दूसरा नाम ब्रह्मचर्य पालन है।

विषयों का परित्याग कर ब्रह्म अर्थात् आत्म ज्ञान में[1] जो रमण करना है वही वास्तव में ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मरमण निशि दिन करहु, ब्रह्महिं आतम राम।
ब्रह्मचर्य यहि जानिये, सब सुख को विश्राम ॥ १ ॥
शील देह से पालिये, पुनि मन वच को लाय।
व्यन्तर देवी पद लहो, कह्यो डवाई मांय ॥ २ ॥
शीलधरण परभाव से, सीता धीज कराय[2]।
वन्हि कुण्ड शीतल भयो, संकट दूर पलाय ॥ ३ ॥
बड़ी सती थी द्रौपदी, रूपे रम्भ समान[3]।
पद्मनाभ के वश पड़ी, हरिजी[4] राख्यो मान[5] ॥ ४ ॥
बहुतक[6] सतियाँ होचुकीं, शीलहिं के परताप।
पाईं मुक्ति अनेक हू, टालो मन सन्ताप[7] ॥ ५ ॥
ब्रह्मचर्य जो आदरहिं, दुख जावे सब दूर।
देवादिक हू रहत हैं, ताके सदा हजूर[8] ॥ ६ ॥
सब सुख शील तें होत है, कष्ट टले सब दूर।
सर्व दुरत[9] हैं विघ्न हू[10], सुख पावें भरपूर ॥ ७ ॥

इस शील के प्रताप से लौकिक[11] और पारलौकिक[12] सुख की प्राप्ति होती है, इसलिये शील के महत्त्व[13] को हृदय में रखकर उसका पालन करना चाहिये।

१—आत्मा के स्वरूप के जानने में। २—सीता जी ने अपनी प्रतीति कराई थी। ३—रम्भा के समान। ४—कृष्णचन्द्रजी। ५—इज्जत। ६—बहुतेरी। ७—मन की व्यथा। ८—वश में। ९—दूर हो जाते हैं। १०—भी। ११—इस लोक के। १२—परलोक के। १३—महिमा, बड़प्पन।

३—तप-धर्म का तीसरा साधन है, इसी को तपस्या भी कहते हैं, इसका व्यवहार करने से कर्म जीर्ण होते हैं, देखो! भगवती सूत्र में कहा है कि—

तवेण किं फले ॥ तवेण वोदाण फले ॥ १ ॥

अर्थात् तप करने से कर्म वोदे पड़ते हैं ॥ १ ॥

आभ्यन्तर और वाह्य भेद से तप बारह प्रकार का कहा गया है, उसका वर्णन दूसरे ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक कहा गया है ।

जो लोग ज्ञान और क्षमा के साथ में तप करते हैं तो उस तप से उन्हें अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है, किन्तु जो लोग अज्ञानता से भी तप करते हैं वह भी उनका तप निष्फल तो नहीं जाता है परन्तु उससे उन्हें थोड़ा सा ही लाभ होता है । आत्मकल्याणकारिणी प्रत्येक क्रिया को ज्ञान सहित करने से जीव का आवागमन मिट जाता है, अतः इस तप रूप कार्य को भी ज्ञान के सहित करना चाहिये[1] ।

इस तप के प्रभाव से बहुत से अनगार[2] सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ।

कृष्णजी की रानियों ने अनेक प्रकार का तप किया था, इस विषय का वर्णन अन्तगड़ सूत्र में विस्तारपूर्वक किया गया है ।

जैसे इकट्ठे हुए कचरे फूंस में अग्नि लगा देने से वह जल कर भस्म हो जाता है, इसी प्रकार कर्म रूपी कचरे में तप रूपी अग्नि के लगाने से वह भस्म हो जाता है, इसलिये कर्मों का जारण करने के लिये तप ही को मुख्य साधन जान कर उसका सेवन करना चाहिये:—

१—गीता में कहा है कि—मूढ ग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तप । परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १ ॥ (अ० १७–१९) अर्थात् मूढ़ता के आग्रह से स्वयं कष्ट उठाकर अथवा दूसरों को सताने के हेतु किया हुआ तप तामस कहलाता है ॥ १ ॥ २—साधु ।

तप की तोप बनाय ले, ज्ञान गोलकहिं लेय ।
कर्म कोट तातें सकल, मनुज[1] जारि तूं देय ॥ १ ॥
तप से होत सुरूप है, तप से स्वर्ग निवास ।
तप से मुक्ती-पद मिलत, तप से दुख को नास ॥ २ ॥
तप करि क्षमा जु राखिये, सकल कषाय[2] निवार ।
कोटिपूर्व लग तप तपे, क्रोध होत सब छार[3] ॥ ३ ॥
क्रोध दवानल[4] परिहरहु[5], या सम[6] जग रिपु[7] नाहिं ।
सज्जन से दुर्जन बनैं, कह्यो नीति के माहिं ॥ ४ ॥
क्षमा सहित जो तप करे, वह[8] मुक्ती पद देय ।
कर्म शत्रु भागे सकल, अजर अमर करि लेय ॥ ५ ॥

तप के महत्त्व का विचार कर इस का सेवन करना चाहिये, यह संसार में सर्वोत्तम[9] कार्य है, इसका सेवन करने से आत्मा शुद्ध होता है ।

४—भावना—धर्म का चौथा साधन भावना है, पूर्वोक्त तीनों साधनों की अपेक्षा यह साधन प्रधान होने से सर्वोत्तम[10] है—और पूर्वोक्त तीनों ही साधन इसी के आश्रयीभूत हैं, तात्पर्य यह है कि—दान, शील, तप, और भावना, ये जो चार साधन बतलाये गये हैं, इन सब में चौथा साधन भावना प्रधान और सर्वोत्तम है, इसलिये भावना के बिना दान, शील और तप अकिञ्चित्कर[11] जैसे होते हैं, जैसे एक के अंक पर चाहे जितनी विन्दियों को रखते जाओ सब सार्थक होती हैं परन्तु एक के अङ्क के बिना सब विन्दियाँ निष्फल होती हैं, इसी प्रकार भावना के साथ में होने से दान, शील और तप, ये तीनों सफल होते हैं और भावना के विना सब निष्फल होते हैं ।

१—मनुष्य । २—काम क्रोध आदि । ३—नष्ट । ४—क्रोध रूपी दावाग्नि । ५—दूर करदो । ६—इसके समान । ७—शत्रु । ८—वह तप । ९—सब से उत्तम । १०—सबसे उत्तम । ११—व्यर्थ रूप ।

भाव से दान की सफलता होती है, देखो श्री महावीर भगवान् के समय मे जीर्ण सेठ ने भावना भाई थी तथा पूर्ण सेठ ने वाकलों का दान दिया था, इस के प्रतिफल में पूर्ण सेठ को तो सोनैया आदि का ही लाभ हुआ था तथा दान न देने पर भी शुद्ध भावना के भाने से जीर्ण सेठ को १२ वें स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

देखो चन्दनवाला ने भगवान् को केवल उड़द का बाकला ही बहराया था[1] वह एक अति मामूली पदार्थ था, परन्तु शुद्ध भावना के प्रभाव से उसने कितने लाभ का उपार्जन किया, तात्पर्य यह है कि शुद्ध भाव के द्वारा चाहें लघु भोजन दिया जावे, चाहें शुष्क भोजन भी दिया जावे तो भी वह खीर के भोजन दान के समान फल देता है तथा भाव के बिना उत्तम पदार्थ के देने पर भी कुछ लाभ नहीं होता है—

आदर का भल[2] कापड़ा,[3] विन आदर का चीर[4] ।
न्यौंत जिमावे रावड़ी,[5] विन आदर की खीर ॥१॥

यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त[6] है कि दान के विषय में भाव ही प्रधान है, इसलिये भावपूर्वक[7] दान करना चाहिये[8] भाव के विना शील पालन भी व्यर्थ रूप होता है, इसलिये विशुद्ध भाव के द्वारा अर्थात् सच्चे मन से शील व्रत का पालन करना चाहिये, क्योंकि भाव के सहित जो शील का पालन करता है वही मुक्ति को देता है तथा भाव के बिना जो शील का पालन करता है वह केवल व्यन्तरादि भव के आराम को देता है।

१—प्रदान किया था। २—भला, अच्छा। ३—पुराना (जीर्ण) वस्त्र। ४—उत्तम वस्त्र। ५—मारवाड देश में तक्र (मट्ठा, छाछ) मिलाकर वाजरा के आटे की रावड़ी बनाई जाती है। ६—काफ़ी। ७—सच्चे भाव (अन्तःकरण की वृत्ति) के साथ। ८—कवि रहीम ने ठीक कहा है कि—अमी पियावत मान विन, रहिमन हमें न सुहाय। प्रेम सहित मरिवो भलो जो विष देय बुलाय ॥१॥

इसी प्रकार तप भी शुद्ध भाव से करना चाहिये, तप को केवल इस लोक के उद्देश्य से नहीं करना चाहिये कि संसार मे मैं तपस्वी कहलाऊँ तथा मेरा मान और गौरव हो, किसी वस्तु की प्राप्ति की अभिलाषा से भी तप नहीं करना चाहिये, यश और कीर्ति के लिये तप नहीं करना चाहिये, तप करके किसी नियाणा को नहीं करना चाहिये; आज कल प्रायः[1] देखा जाता है कि जब बहुत से वाई भाई एकत्रित[2] होते हैं तब तपस्या का पचखाण करते हैं, एक मास वा दो मास का नियम करते हैं, ऐसा करना जैन सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से एकत्रित लोगों मे से बहुत से लोग तपस्या करने वाले को धन्यवाद देते हैं—तथा पारणे का समय निकट आने पर सर्वत्र[3] पत्रों को भेजते हैं कि अमुक दिन अमुक महाराज के पारणे का उत्सव होगा, पत्रो को पाकर बहुत से लोग एकत्रित होते हैं, उनमे लड्डू ,मिठाई और दूध आदि पदार्थ बांटे जाते हैं, इस उत्सव को देख कर महाराज फूले नहीं समाते हैं, महाराज को कुछ न कुछ अभिमान भी घेर लेता है, ऐसा तप मुक्ति का दायक[4] नहीं हो सकता है। विचारने की बात है कि—जब हम लोग पूर्णतया दया का उच्चारण करते हैं तो हमें पूर्णतया दया का पालन भी करना चाहिये, यदि हम लोग ही किसी प्रकार हिंसा मे प्रवृत्ति करेंगे तो अन्य लोगों के लिये हमारा ऐसा करना कितना आश्चर्यकारक[5] होगा।

सूक्ष्म दृष्टि से इस बात का विचार करना चाहिये कि श्री आदिनाथ भगवान् ने एक वर्ष का उत्कृष्ट तप किया था, चरम तीर्थङ्करों ने छः मास का उत्कृष्ट[6] तप किया था, उनके पारणे के समय में कौन से राजा, सेठ और सेनापति आदि आये थे ? यदि कोई राजा आदि उनके पारणे के समय में आये हो और इस विषय का कोई सूत्र पाठ हो तो दिखलाओ।

१—अकसर। २—इकठे। ३—सब जगह। ४—देने वाला। ५—अचम्भे को पैदा करने वाला। ६—उच्च।

अरे भोले भाइयो ! क्यों भ्रम में पड़े हो, और क्यों व्यर्थ के काम करते हो, इस थोथी बकवाद में क्या रक्खा है, अपने सामर्थ्य की ओर तो ध्यान दो कि कितना है, पूर्वकाल में जो सामर्थ्यवान् पुरुष थे उन्होंने तो ऐसा आडम्बर नहीं रचा था जैसा कि तुम लोग रचते हो, सच है थोथे चने अधिक बजते हैं ।

भरिया ते उछले नहीं, उछले तेही आध ।
यही परीक्षा मनुज की, बोले और जु लाध[1] ।१।

आज कल आडम्बर की प्रथा अधिक चल निकली है-कि प्रत्येक कार्य में आडम्बर अधिक दिखलाया जाता है, दीक्षा के समय में भी बहुत से साधु मुनिराज वा साध्वियां जब दीक्षा को ग्रहण करते हैं तब केशर से वा हींगलू से चद्दर को छपाते हैं, भला यह किस सूत्र के विधान से करते हैं ? मेहदी लगाते हैं; यह किस सूत्र की प्ररूपणा है[2] ?

यदि किसी साधु वा साध्वी के पास गृहस्थ चेला व चेली रहती है तो उसको शिथिलाचारी वा पासत्था कहते हैं, दीक्षा लेने के बाद केसर से रँगी हुई चद्दर को ओढ़ते हैं, इसको क्या कहना चाहिये ? जिस बाई का संयम लेने का भाव होता है वह आर्यां के पास रहती है, अच्छे वस्त्रों तथा आभूषणों को भी पहनती है, घर जाने का त्याग होने से प्रति समय आर्यां के ही पास रहती है, ऐसी दशा में आर्यां को कोई दोष नहीं लग सकता है, हाँ यदि वह आर्यां इस दशा में कुछ हर्ष शोक माने तो वह अवश्य दोष की भागिनी हो सकती है, तात्पर्य यह है कि भाव-शुद्धि होनी चाहिये, भाव की शुद्धि होने से आर्यां के पास कोई बाई चाहे छः मास रहे वा पाँच वर्ष रहे, कोई हानि नहीं है और यदि भाव की शुद्धि नहीं है तथा उसके बिना राग-द्वेष विद्यमान[3] है तो वास्तव मे वह आर्यां ही नाम मात्र की है, इसलिये साधु हो वा साध्वी हो श्रावक हो वा श्राविका हो, वा कोई हो,

१-जैसा बोलता है वैसा ही करके दिखलाता है । २—कथन । ३—मौजूद ।

सबको अपना भाव शुद्ध रखना चाहिये, क्योंकि भाव के शुद्ध रहने से ही सबका कल्याण हो सकता है, भाव की शुद्धि के विना राग और द्वेष के कारण तेरी मेरी करने से कुछ लाभ नहीं हो सकता है और न भाव की शुद्धि के विना ओघा और मुहपत्ती के धारण मात्र से कुछ उद्देश्य पूरा हो सकता है।

यथार्थ रीति से धर्म के पालन करके के विना मनुष्य को सुख, शान्ति और कल्याण की प्राप्ति नहीं हो सकती है, और न आत्मा का उद्धार ही हो सकता है, धर्म का पालन करने के लिये पूर्वोक्त चार साधनों के अतिरिक्त दश साधनों की और भी आवश्यकता होती है, मनुष्य जन्म, आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, पूर्ण आयु, सम्पूर्ण इन्द्रिय, नीरोग शरीर, सद्गुरु, सत्संग, शुद्ध श्रद्धा और धर्माराधन पौरुष, देखो! जीव कर्मवश[1] होकर चार गतियों में निरन्तर भ्रमण करता रहता है, उनमें से मनुष्य गति का प्राप्त होना अति कठिन है, मनुष्य गति के प्राप्त हो जाने पर भी आर्य क्षेत्र का मिलना कठिन है, आर्य क्षेत्र के मिले विना धर्म की प्राप्ति कठिन है, आर्य क्षेत्र के प्राप्त हो जाने पर भी उत्तम कुल का मिलना कठिन है, उत्तम कुल के प्राप्त होने पर भी पूर्ण आयु का मिलना कठिन है, पूर्ण आयु के न मिलने पर पूर्वोक्त तीनों साधनो के मिल जाने पर भी धर्म का अर्जन नहीं हो सकता है, अतः वे पूर्णायु के विना व्यर्थ रूप हो जाते हैं, पूर्णायु के मिल जाने पर भी सम्पूर्ण इन्द्रियों का मिलना कठिन है, सम्पूर्ण इन्द्रियों के मिले विना मनुष्य ठीक रीति से धर्म का पालन नहीं कर सकता है, सम्पूर्ण इन्द्रियों के मिल जाने पर भी नीरोग[2] शरीर का मिलना कठिन है, नीरोग शरीर के मिले विना धर्म का पालन कैसे हो सकता है ? क्योंकि नीरोग मनुष्य ही सत्क्रिया के द्वारा धर्म की प्राप्ति कर सकता है, रोगी मनुष्य को अपना जीवन भी भारभूत हो आता है, वह धर्माचरण[3] कैसे कर सकता है ?

१—कर्म के आधीन। २—रोगरहित। ३—धर्म का व्यवहार।

नीरोग शरीर के मिल जाने पर भी रागद्वेष रहित सद्गुरु का मिलना कठिन है और सद्गुरु के मिले विना धर्म के स्वरूप का ज्ञान न होने से धर्म का पालन कैसे कर सकता है ? सत्य ही कहा है कि–

लोभी गुरु तारे नहीं, तरे[१] सो तारन हार[२] ।
जो तू तरना चहत है, निरलोभी[३] गुरु धार[४] ॥१

सद्गुरु के मिल जाने पर भी सत्संग का योग मिलना कठिन है–और सत्सग के योग के विना धर्म की प्राप्ति नही हो सकती है, देखो ! सद्गुरु के प्राप्त हो जाने पर भी यदि मनुष्य घर के धन्धों के झगड़े के कारण सद्गुरु के पास न जा सके और उसके उपदेश को न सुन सके तो उसे धर्म के स्वरूप का ज्ञान कैसे हो सकता है और धर्म के स्वरूप को न जानने के कारण वह धर्म का सेवन कैसे कर सकता है ? बहुधा लोग सांसारिक धन्धों मे व्यग्र रहने के कारण कहा करते हैं कि "क्या करें हमें सांसारिक धन्धों के कारण बिल्कुल फुर्सत नहीं मिलती है, हम सद्गुरु के पास कहाँ से जावें और कैसे धर्मोपदेश सुनें" इत्यादि, बस ऐसे लोगों का अमूल्य मनुष्य जन्म बिल्कुल व्यर्थ जाता है और एक दिन मृत्यु ही आकर उन्हें सांसारिक धन्धों से फुर्सत दिलाती है । एक दृष्टान्त है कि किसी नगर में एक मुनिराज ने चौमासा किया था, वे प्रति दिन सब लोगों को धर्म सेवन का उपदेश देते थे; बहुत से स्त्री पुरुष व्याख्यान सुनने के लिये आया करते थे, उसी नगर में धन्ना नामक एक बड़ा सेठ रहता था, एक दिन साधु जी उसके घर में भिक्षा के लिये चले गये, सेठ ने भिक्षादान आदि के द्वारा उनका सत्कार किया, मुनि ने सेठ से कहा कि—तुम शास्त्र श्रवण क्यों नहीं करते हो ? सेठ ने उत्तर दिया कि–" महाराज ! गृहस्थ के कार्य के सबब से

१—जो आप पार होता है। २—तारने वाला । ३ लोभ से रहित । ४—करले, बनाले ।

धर्माराधन के द्वारा इनको सफल करना चाहिये; क्योंकि धर्म के अतिरिक्त लोक और परलोक में मनुष्य का कल्याण करने वाला दूसरा कोई नहीं है। माता, पिता, पुत्र, भाई और बहिन आदि कुटुम्बी जनों का मोह नहीं करना चाहिये, क्योकि संसार में कोई किसी का हितकारी नहीं है; किंतु सब स्वार्थ के लिये स्नेह करते हैं, स्वार्थ के विना कोई किसी को अच्छा नहीं लगता है, एक दृष्टांत है कि—एक नगर में एक साहूकार रहता था उसके चार पुत्र थे, एक दिन उस सेठ ने विचार किया कि अब मेरी अवस्था वृद्धावस्था के समीप है, इस लिये मैं अपनी सम्पत्ति को अपने चारों पुत्रों को बांटकर एकांत स्थान मे निवास कर धर्म ध्यान करूं, इसी विचार को दृढ़ करके उस ने अपने चारों पुत्रों को इकट्ठा करके उनसे कहा कि अब मेरा समय धर्म ध्यान करने का है; इसलिए तुम लोग अपना २ काम सम्भालो और मैं अपनी सम्पत्ति को तुम लोगों को बांटे देता हूं, यह कह कर उस ने क्षेत्र, वस्तु, हिरण्य तथा धन धान्य आदि सब पदार्थों को उन पुत्रों को बांट दिया तथा स्वयं एकांत स्थान मे निवास कर आत्म कार्य करने में प्रवृत्त होगया, कुछ दिनों तक लोक दिखावे के लिए चारों पुत्रों ने पिता की सार संभाल की परन्तु थोड़े ही समय के बाद पुत्रो ने सार संभाल छोड़ कर किनारा लिया, सेठजी रोटियो से भी मौताज होगये, वस्त्राभाव से भी दुःख उठाने लगे, कुछ समय के वाद शीत ऋतु आगई, सौड़ न होने से सेठजी शीत से पीड़ित होने लगे, एक दिन उसने अपने वड़े पुत्र को वुला कर कहा कि—वेटा! मुझ को शीत वाधा देता है इसलिये एक सौड़ भरवा कर भेज दो, पुत्र बोला कि पिता जी। आपने अपना द्रव्य मुझ अकेले को नहीं दिया है किंतु जैसा औरों को दिया है वैसा ही मुझे भी दिया है; इसलिये इस बात को औरों से भी कहिये, दूसरे करेंगे सो मैं भी करूंगा, यह सुन कर सेठ ने कहा कि तू सब में वड़ा है; तुझ पर अधिक वोझ है तब पुत्र वोला कि आपने मुझे ज्येष्ठ समझ कर औरो से अधिक धन तो नहीं दिया? इस वात को सुन कर सेठजी के नेत्रों में आँसुओं की धारा वहने लगी

और उनका गला भर गया, इस दशा को देखकर पुत्र को कुछ दया आई और उसने अपने पुत्र से कहा कि—पुत्र ! एक पुरानी कनात तहखाने में रक्खी है; उसको ले आओ तथा उसकी कई तह कर के इस डोकरा पर डाल दो कि जिससे इसका शीत रुके, उस लड़के ने पिता के कहने से वैसा ही किया अर्थात् तहखाने में से कनात को उठा लाया और उसके दो भाग किये, एक भाग उस डोकरा को ओढ़ा दिया तथा एक भाग रख छोड़ा, तब पिता ने अपने लड़के से कहा कि हे पुत्र ! तू ने यह क्या किया कनात के दो भाग क्यों किये; तब उस लड़के ने उत्तर दिया कि मैंने यह काम ठीक किया है, मेरा काम न्याय संगत है, देखिये आपने अपने पिता को यह जीर्ण वस्त्र दिया है, यही शिक्षा मैंने भी धारण की है और कनात का आधा भाग इसलिये रख छोड़ा है कि आप जब वृद्ध होंगे तब यह कनात का आधा भाग आप के काम आवेगा, आप जैसा बर्त्ताव अपने पिता के साथ करते हैं वैसा ही मैं समय आने पर आपके साथ करूंगा, क्योंकि बड़ों की बांधी हुई मर्यादा पर चलना पुत्र का कर्त्तव्य है, इस बात को सुन कर लड़के का पिता (सेठजी का ज्येष्ठ पुत्र) कुछ लज्जित हुआ और लोक लज्जावश अपने पिता (सेठ) की सेवा करने लगा, इस दृष्टांत का उपनय यह है कि स्वार्थ का संसार है, स्वार्थ के बिना कोई किसी से स्नेह नहीं करता है, इसलिये संसार के नाते को असत्य जानकर स्त्री पुत्रादि में ममत्व नहीं करना चाहिए, विचार कर देखने से निश्चय हो सकता है कि संसार का सब प्रपंच भानमती के तमासे के समान असत्य है, यह संसार वास्तव में सराय के समान है, जैसे सराय में अनेक यात्री लोग आकर ठहरते हैं और फिर समय आने पर चले जाते हैं, ठीक इसी प्रकार इस संसार रूपी सराय में भी पिता, माता, भाई, बहिन आदि रूप में अनेक यात्री एकत्रित होते हैं और फिर काल चक्र में फँस कर विदा हो जाते हैं, यही विचार कर ज्ञानी पुरुष इस मे आसक्ति नहीं करते हैं और संसार के सब भोगों और पदार्थों को अस्थिर और अनित्य जानते हैं, किन्तु जो लोग इस बात को नहीं जानते हैं वा

जरा भी फुर्सत नहीं मिलती है; अतः लाचार हूं" तब साधु जी ने कहा कि तुम्हें खाने, पीने, शौच जाने तथा शयन करने आदि कामों के करने के लिये भी तो फुर्सत मिलती है तो शास्त्र श्रवण के लिये भी दो घड़ी की फुरसत निकालनी चाहिये, क्योंकि अपने आत्मा के उद्धार का यही कार्य है इत्यादि, परन्तु सेठ के मन मे साधु के कथन का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा, इसी प्रकार चौमासे भर में साधुजी ने सेठ से इस विषय मे कई वार कहा, परन्तु सेठ ने सुनी अनसुनी करदी, आसौज का महीना आया, सारे नगर में मेलेरिया ज्वर फैला, सेठ जी उसमें ग्रस्त होकर बीमार पड़े तथा कुछ दिन के बाद मृत्यु को प्राप्त हुए, उस दिन सब महाजन लोग उसके अग्नि संस्कार मे जाने वाले थे अतः साधु जी के व्याख्यान में कोई नहीं गया, तब साधु जी ने एक मनुष्य से पूछा कि आज श्रावक लोग क्यो नहीं आये? तब उस मनुष्य ने उत्तर दिया कि महाराज ! आज इस नगर में एक प्रभावशाली सेठ मर गया है; अतः सब लोग उसके अग्नि संस्कार में जाने वाले हैं, यह सुनकर साधु जी ने कहा कि—ओहो ! वह कैसे मर गया? उसको तो कभी फुरसत ही नहीं थी, फिर साधु जी ने कहा कि क्या उसकी लाश को ले गये ? तब उस मनुष्य ने उत्तर दिया कि अभी थोड़ी देर में ले जायँगे, यह सुनकर साधुजी पुस्तक लेकर उसके घर पर पहुँचे, उस घर में रोदन हो रहा था, हाहाकार मच रहा था, साधु जी को देखकर एक मनुष्य ने उनसे आकर कहा कि इस घर के अन्दर मत जाइये, इसमें मृतक पड़ा है, तब साधु जी ने कहा कि मैं किसी कार्य के लिये नहीं जाता हूं, फकत सेठ को धर्म सुनाने के लिये जाता हूं, तब लोग बोले कि मिट्टी क्या धर्म सुनेगी, चेतन तो चला गया, तब साधु जी बोले कि आज सेठ को फुरसत मिली है, इसलिये मैं भी आज इन्हे धर्म सुनाने को आ गया हूँ, तब सब लोग बोले कि महाराज ! आप को ऐसा कहना उचित नहीं है; मृतक शरीर अचेतन है, वह धर्म को क्या सुन सकता है ? तब साधु जी ने कहा कि तुम तो मुर्दे नहीं हो, तुम तो रोज फुरसत निकाल कर धर्म का उपदेश सुना करो, यदि तुम

ऐसा नहीं करोगे अर्थात् सांसारिक धन्धो से फुरसत न निकालोगे तो एक दिन इस सेठ के समान मृत्यु के द्वारा तुम सबको भी धन्धों से छूट कर फुर्सत मिलेगी, क्योंकि यह काल चक्र एक दिन सबको धन्धों से छुड़ाकर अपने पैर तले दबाता है, जो लोग जीवित दशा में फुर्सत निकाल कर धर्मोपदेश का श्रवण कर धर्म का आराधन करते हैं वे ही जन्म मरण से छूट कर मुक्ति पद को प्राप्त होते हैं और इस काल चक्र के आघात से बच जाते हैं, इस दृष्टान्त का उपनय यह है कि उक्त सेठ के समान मनुष्य को सांसारिक धन्धों में ही व्यग्र नहीं रहना चाहिये, किन्तु यथा योग्य समय निकाल कर धर्मोपदेश का श्रवण कर उसका आराधन करना चाहिये । आठ प्रहर में से कम से कम दो घड़ी तो प्रत्येक मनुष्य को धर्म ध्यान अवश्य ही करना चाहिये । सत्संग के मिल जाने पर भी शुद्ध श्रद्धा का होना कठिन है और शुद्ध श्रद्धा के बिना धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है, शुद्ध श्रद्धा के हो जाने पर भी धर्माराधन पौरुष[1] का होना कठिन है और धर्माराधन-पौरुष के न होने पर धर्म की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? देखो ! लोग सांसारिक[2] कार्यों में पौद्गलिक सुख के लिये अपना कितना बल-पौरुष लगाते हैं, परन्तु धार्मिक[3] कार्यों में उसका दशमांश[4] भी बल पौरुष नहीं लगाते हैं, यदि वे सांसारिक कार्यों मे अपने बल-पौरुष को न लगाकर धार्मिक कार्यों में अपने बल-पौरुष को पूर्णतया[5] लगावें तो शीघ्र ही निस्तार[6] हो सकता है ।

जैसा चित संसार में, वैसा प्रभु से होय ।
चला जाय वह मुक्ति में, पला न पकड़े कोय ॥१॥

शुभ कर्मानुयोग से मनुष्य को मानव जन्म आदि साधनों की प्राप्ति हुई है; इसलिये उसे इन साधनों को व्यर्थ में नहीं गमाना चाहिये; किंतु

१-–धर्म के सेवन में पुरुषार्थ । २—संसार के । ३—धर्म सम्बन्धी । ४—दशवा हिस्सा । ५—पूरे तौर से । ६—छुटकारा ।

लोगो ने इसका निरीक्षण कर लिया है, कहिये इस मकान में कोई दोष तो नहीं है, राजा के प्रश्न के उत्तर में सबने एक स्वर से यही कहा कि–"अन्नदाताजी ! इस मकान में कोई दोष नहीं है, भला आप के बनवाये हुये मकान मे दोष कैसे रह सकता है ," सब लोगों के इस वचन को सुनकर वह साधु अपना सिर धुन २ कर रोने लगा, जब राजा की दृष्टि उस साधु पर पड़ी और उसे इस दशा मे देखा तब राजा ने उससे पूछा कि हे महात्मा ! आप क्यों सिर पीट कर रोते हैं ? क्या आप को समझ में इनकी बात नहीं आई ? अथवा इस मकान मे कोई दोष हो तो कृपा करके बतलाइये ? तब साधु ने कहा कि हे राजन् ! आपके मकान में दो दोष बहुत बड़े हैं– पहिला तो यह कि जिसने इस मकान को बनवाया है वह पुरुष स्थायी न रह कर नष्ट हो जावेगा, दूसरा दोष यह है कि संख्याता काल मे यह मकान भी नष्ट हो जावेगा, बस ये ही दो बड़े दोष हैं, इसलिये इसकी सराहना करना उचित नहीं है, साधु के इस कथन को सुनकर राजा को वैराग्य उत्पन्न होगया और उसने संयम को स्वीकार किया, तात्पर्य यही है कि सांसारिक पदार्थों में आशक्ति और ममत्त्व को कभी नहीं करना चाहिये किन्तु धर्माराधन में मनुष्य को सर्वदा उद्यम करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से ही उसके आत्मा का कल्याण और निस्तार हो सकता है ।

२–धर्मद्वार-स्वरूप-भाषा पद्य ।

धर्मरूपी भवन में प्रवेश करने के लिये निम्नलिखित-तृष्णा त्याग आदि द्वार हैं, इसलिये प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि वह यदि धर्म रूपी भवन में पहुँचकर सुख और शान्तिपूर्वक निवास करना चाहे तो उसे मनोमालिन्य रूप कचरे को दूर कर तृष्णा-त्याग आदि द्वारों को विशुद्ध और उद्घटित रखना चाहिये, इन द्वारो का भाषा पद्यों में इसलिये वर्णन किया जाता है कि ये पद्य सरलतापूर्वक कण्ठस्थ होकर सर्व साधारण को लाभ पहुँचा सकेः—

१-तृष्णा[1] त्याग--

द्रव्योपार्जन समय में, करते बहुत उपाध ।
जाती की लज्जा तजी, निष्फल सेवा साध ॥१॥
बिन आदर के भोगव्या, वायस[2] सम आहार ।
तृष्णा को मेटा नहीं, नहिं सन्तोष लिगार ॥२॥
धन अरथे खोदी घणी, धरती पर्वत खान ।
मन्त्राराधन बहु किया, मिली न कौड़ी कान ॥३॥
दिन दिन आयू घटत है, सर्व लोक दुःख मांय ।
जरा आय अब घेरिया, नहिं तोहीं सुध आय ॥४॥
विषय भोग आशा तजी, जरा जमायो जोर ।
लाठी से चलने लगा, तदपि[3] मृत्यु-भय घोर ॥५॥
संसृति[4] छेदन के लिये, प्रभु सुमिरन नहिं कीन ।
स्वर्गकपाट-उघाड़ हित, धर्म न संचय कीन ॥६॥
काल अन्त नहिं होत है, आयू बीती जात ।
तृष्णा दिन दिन बढ़त है, जीर्ण कलेवर[5] थाय ॥७॥
म्लान भयो मुख वदन है, श्वेत भये सब केस ।
शिथिल भई अब देहहू, तृष्णा तरुण सुवेस ॥८॥

२-काम[6] त्याग--

लँगड़ा काना दूबला, पूछ विहीनी काय[7] ।
कृमि से पूरित श्वान है, तोभी मदन[8] सताय ॥१॥

१ सांसारिक पदार्थों का संग्रह करने में सन्तोष न करना किन्तु आवश्यकता से भी अधिक पदर्थों का येन केन प्रकारेण संग्रह करने में तन मन से लगा रहना, तथा संग्रह किये हुए पदार्थों का आवश्यक कामों में त्याग न करना तृष्णा कहलाती है। २ कौआ। ३ तो भी। ४ ससार। ५ शरीर। ६ स्त्रीसङ्गमाभिलाषा। ७ शरीर। ८ कामदेव।

जानकर भी प्रमाद वश मोह निद्रा में पड़े रहते हैं वे दोनों लोकों के सुखों को तिलाञ्जलि दे बैठते हैं—और पीछे पछताते हैं, एक दृष्टान्त है—कि एक राजा ने एक सुन्दर बगीचा बनवाया, उसी के भीतर अपने निवास के लिये एक बहुत ही दिव्य विशाल महल भी बनवाया तथा परिवार के सहित वह उसी में निवास भी करने लगा, अपने परिजन वर्ग के सिवाय उसने ग़ैर मनुष्य के वहाँ आने का सर्वथा निषेध कर दिया और वह इसलिये कि लोगों के आवागमन से महल और बाग़ की सफ़ाई में फ़र्क़ न आजावे, एक दिन ग्रीष्म ऋतु में धूप से सन्तप्त होकर घबड़ाया हुआ एक साधु वहाँ आगया तथा महल की शीतल छाया को देख कर विश्राम करने की इच्छा से सन्तरी से बोला कि यदि तुम कहो तो मैं थोड़ी देर के लिये इस दालान में बैठ जाऊं, तब सन्तरी बोला कि आप बेशक विश्राम करो, मेरा कुछ हर्ज नहीं है; परन्तु राजा क्रोधी है; यदि वह देखेगा तो अवश्य आपको तंग करेगा, तब साधु ने कहा कि खैर! यदि राजा हमसे कुछ कहेगा तो हम उसे यथा योग्य उत्तर दे देंगे, यह कह कर साधु दालान में बैठ गया, थोड़ी देर के बाद राजा वहां आया और साधु को दालान में बैठा हुआ देख कर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और लाल नेत्र करके बोला कि अरे गलीज! तू कौन है और यहां क्यों बैठा है, साधु ने कहा कि मैं भिक्षुक हूं—इस मध्याह्न वेला में थोड़ी देर विश्राम लेने के लिये यहाँ बैठ गया हूं, आप खफ़ा मत हूजिये; मैं थोड़ी देर में अपना रास्ता लूंगा, तब राजा और भी क्रुद्ध होकर बोला कि चलो चलो, जल्दी उठो, यहाँ बैठने का कुछ काम नहीं है, तब साधु ने कहा कि राजा! इतने खफ़ा क्यों होते हो, हम यहाँ निवास करने के लिये नहीं आये हैं, हमने तो इसको सराय समझ कर दो घड़ी विश्राम लेने का विचार किया था, इस वचन को सुन कर राजा के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा और वह साधु से बोला कि अरे पिशाच? तू बड़ा पागल है, जो तू ऐसे दिव्य महल को सराय कहता है, साधु ने कहा कि राजा! क्रोध मत करो, मेरे वचन पर ध्यान देकर सोचो, यह सराय नहीं है तो और क्या है?

देखो ! सराय में मुसाफ़िर ठहरते हैं, रात भर ठहर कर प्रातःकाल अपना रास्ता लेते हैं, इसी प्रकार यह संसार भी सराय है, इसमें भी सब कर्मानुसार आ आकर ठहरते हैं तथा आयु के क्षीण होने पर अपना २ रास्ता लेते हैं, देखो ! तुम्हारा पिता, दादा, परदादा, इत्यादि अनेक लोग इस संसार रूपी सराय से चले गये, इनमें से अब कोई भी तुम्हारी दृष्टि में आता है। यह सुनकर राजा ने कहा कि—नहीं, इनमें से तो अब कोई नहीं दीखता है, तब साधु ने कहा कि बस, अब तुम सोच लो, जब तुम भी इस संसार रूपी सराय से चले जाओगे तब तुम भी कहाँ से आओगे और कौन इस महल में निवास करेगा, साधु की इस बात को सुनकर राजा को वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने हाथ जोड़कर साधु जी से कहा कि महाराज ! आपका कहना सर्वथा ठीक है कि— "यह संसार सराय के समान है।" देखो ! ये सांसारिक पौद्गलिक सुख अनित्य हैं, ये आत्मा को सुख देने वाले नहीं हैं ये तो मनुष्य को अनेक बार मिल चुके हैं और अनेकबार इनसे उसका वियोग भी हो चुका है, औदारिक और वैक्रिय शरीरों का संयोग भी उसे अनेक बार प्राप्त हो चुका है, अनन्त जन्म मरण भी हो चुके हैं तथा होते रहेंगे, परन्तु इन सब पौद्गलिक संयोगों से आत्मा को आज तक तो शान्ति प्राप्त नहीं हुई है, अब आगे को इनसे शान्ति मिलने की क्या आशा हो सकती है ? जब यह बात है तो बुद्धिमान् पुरुष को इन पौद्गलिक सुखों को पाकर उनमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये और न उनकी प्राप्ति होने पर प्रमाद में पड़कर अपने कर्त्तव्य को भूलना चाहिये, देखो ! एक राजा ने एक बड़ा भारी आलीशान मकान बनवाया था, जब वह बन कर तैयार हो गया तब राजा ने अपने नगर के बड़े २ विद्वानों, ज्योतिषियों और सेठ साहूकारों का आमन्त्रण कर उन्हें एकत्रित किया, सबके एकत्रित होने पर उस मकान में बड़ा भारी कोलाहल होने लगा, मकान के समीपवर्त्ती मार्ग से एक महात्मा जा रहा था, वह भी कोलाहल को सुनकर कौतुकवश उस मकान में आकर एक किनारे बैठ गया, राजा ने उन सब लोगों से पूछा कि मैंने यह मकान बनवाया है, आप

फूटा घेरा गल फँसा, दुःख भयो तिस वार।
तो भी काम न छोड़ियां, फिरता कुत्ती लार[१] ॥२॥
नीरस भोजन सेविया, सो भी एकहिं वार।
भीख मांगकर खात है, नहिं तहुँ काम विसार[२] ॥३॥
भूमि शयन भूखौं मरे, सहे सीत अरु ताप।
पतित दशा में पड्यो है, तदपि[३] काम-संताप ॥४॥
खंड खंड गहि कीन्ह है, अति ही कन्था[४] भार।
विकल वदन[५] दीसत[६] तहूँ[७], अहह सतावत मार[८] ॥५॥

३—विषयभोग त्याग—

भोग में भय रोग का, नृप भय धन में जान।
स्वामी का भय दास को, विग्रह[९] रिपु[१०] भय मान॥१॥
मान होन अपमान भय, सद्‌गुण दुर्जन जान।
मृत्यु त्रास[११] है देह को, निरभय भुक्ती जान ॥२॥
एकहु इन्द्रिय वश पड़े, काम भोग लपटाय।
विना ज्ञान मानव[१२] अहो, मरिके नरकहिं जाय ॥३॥
विषय भोग को जानिये, फल किंपाक समान।
चाखत में मधुरे लगैं, दुःख होत अवसान[१३] ॥४॥
कण्ठी डोरा पहिरिके, मुख में चावत पान।
परभव[१४] से डरते नहीं, निरखत नारि विरान[१५] ॥५॥

१ पीछे। २ भूलता है। ३ तो भी। ४ गुदड़ी। ५ व्याकुल मुख वाला। ६ दीखता है। ७ तोभी। ८ कामदेव। ९ लड़ाई में। १० शत्रु। ११ भय। १२ मनुष्य। १३ अन्त में। १४ परलोक। १५ दूसरे की।

४—वैराग्य—

संयम मारग साध कर, रहो अपुन आधीन ।
ज्ञानादिक में रमण कर, मुक्ति करहु स्वाधीन[१] ॥१॥
सम्यग्भाव[२] को साधकर, समता चित में लाय ।
तामस[३] को दूरहिं तजैं, तब साधू कहलाय ॥२॥
बिजली के चमकार सम[४], जिनि सन्ध्या को भास ।
ऐसो सुख संसार को, छिन मंह होत विनाश ॥३॥
डाभ[५] अनी[६] जल विन्दु अरु, अञ्जलि का जिमि नीर[७]
धीरे धीरे घटत है, तिमि आयू जु शरीर ॥४॥
ज्यों बनिया की फौज सब, भगत नगारा[८] देत ।
समझ समझ तू जीवड़ा, जरा करेगी श्वेत[९] ॥५॥
विप्र चंडालरु नीच में, सेठ सेनापति कोय ।
धनी रंक अरु भूप में, मृत्युभेद नहिं कोय ॥६॥
शान्तभाव को धारकर, चंचलता को छोड़ ।
नाशवान संसार से, जल्दी मुख को मोड़ ॥७॥
माया ममता छोड़कर, प्रभु में चित्त लगाय ।
आतम सुख को जो चहे, तो जगदीशहिं ध्याय ॥८॥
सर्व परिग्रह त्याग कर, सर्व कषाय[१०] निवार[११] ।
सर्व भोग को त्याग कर, कर्म दग्ध करि डार ॥९॥
आत्मार्थी शुध साधुका, कहूं शुद्ध अधिकार ।
राजा से भी अधिकतर[१२], साधु ऋद्धि विस्तार ॥१०॥

१—अपने अधीन । २—सम्यक्त्व । ३—तमोगुण, तमोगुण कार्य आदि । ४—चमक के समान । ५—कुश । ६—नोक । ७—पानी । ८—लड़ाई का डंका । ९—सफ़ेद । १०—क्रोधादि । ११—दूर कर । १२—बहुत ज्यादा ।

महि[1] शय्या[2] है साधुकी, भुजदंड तकिया जान ।
विपुल[3] अकाश तँबू तन्यो, पवनहिं पंखा जान ॥१३॥
चन्द्र सुदीपक जानिये, विरति[4] भारिया[5] जान ।
ताके संग आनँद सहित, सुख भोगत सुज्ञान ॥१४॥

५—दुर्जन-त्याग—

दुरजन से दूरहिं रहो, अरु[6] विद्यायुत[7] होय ।
मणिधारी किमि सर्पहू, भयदायक[8] नहिं होय ॥१॥
लोभ सरिस[9] अवगुन नहीं, तपनहिं सत्य समान ।
तीरथ नहिं मन शुद्धि सम, विद्या सम धन आन[10]॥२॥
नहिं भूषण यश के सरिश[11], अपयश मृत्यु-समान ।
विद्यासम बन्धू नहीं, नहिं दुख पिशुन[12] समान॥३॥
कहत शिथिल लज्जालु से, व्रतधारिहिं[13] पाखण्ड[14] ।
शील युतहिं[15] कपटी कहत, कहत सरल[16] से भंड[17]॥४॥
दीन कहत प्रियवादिको, तेजस्विहिं अभिमानि ।
वक्ता[18] को वाचाल[19] कह, दुरजन अवगुन खानि ॥५॥
पहिले लम्बी होत है, प्रथम दिवस की छाय ।
चढ़े तेज सूरज वही, क्रम क्रम से घटिजाय[20] ॥६॥

१—पृथिवी । २—सेज, चारपाई । ३—बड़ा । ४—वैराग्य । ५—स्त्री । ६—चाहे । ७—विद्या के सहित, विद्वान् । ८—भय का देने वाला । ९—समान । १०—दूसरा । ११—समान । १२—चुगलखोर । १३—व्रतधारीको । १४—पाखण्डी । १५—शीलवान्‌को । १६—सीधा । १७—भाण्ड । १८—बोलने में चतुर । १९—बकवादी । २०—दिन के पूर्वार्धं में छाया अधिक होती है, परन्तु ज्यों २ सूर्य चढ़ता जाता है त्यों २ वह नष्ट हो जाती है ।

ऐसिहिं दुर्जन प्रीति है, प्रथम जु लम्बी होय।
क्रम क्रम से घटि के वही[1], अन्तहिं नासै सोय ॥७॥
सुजन प्रीति उत्तर दिवस, छाया सरिस जु होय।
क्रम क्रम से वह बढ़त[2] है, ता सन सब सुख होय ॥८॥
मृग मछली अरु सुजन कहँ, तृण जल से सन्तोष।
कुटिल लोग बिन कारणहिं, करत वैर अफसोस ॥९॥

६-सत्सङ्ग—

सज्जन की संगति भली, परगुण[3] प्रीति जु राख।
विनय नम्रता धारिके, विद्या व्यसनहिं राख ॥१॥
निज तिय[4] मन राखत सुजन, पर निन्दा भयमान।
प्रभुजी का सुमिरन करत, करत आत्म कल्यान ॥२॥
दानमान सम्मान में, गुपत[5] रखत परिणाम[6]।
घर आये आदर करत, तेहिं सुधरत सब काम ॥३॥
करि नित पर उपकार को, कहत न कबहूं बात।
परकृत[7] गुण[8] भाषत सदा, सज्जन जानहु तात[9] ॥४॥
धन लहि मद त्यागत सदा, पर चर्चा विनिवार[10]।
त्याग निरादर को करत, तिन्ह व्रत यह असि धार[11] ॥५॥
पर कर[12] ऊपर कर करत, कीरति अधिक सुहोय।
मुख पवित्र निज करत हैं, प्रभु गुण गावत सोय ॥६॥

१—वही। २—पराह्ण (दिन के पश्चिम भाग) में प्रथम छाया थोडी होती है परन्तु ज्यों २ सूर्य ढलता जाता है त्यों २ वह बढ़ती जाती है। ३—दूसरे के गुण में। ४—अपनी स्त्री में। ५—गुप्त, छिपा हुआ। ६—भाव। ७—दूसरे से की हुई। ८—भलाई। ९—हे प्यारे। १०—छोड कर। ११—तलवार की धारा के समान। १२—हाथ।

श्रोत्र[१] शुद्ध गुरु वचन सुनि, पद शुद्ध गुरु ढिंग[२] जाय ।
होत शुद्ध पुनि आत्मा, जो सम भाव रखाय ॥७॥
तप्त[३] लोह पर तोय[४] बिंदु, नामहुं को न लखाय[५] ।
वही बिन्दु जलपत्र[६] पर, मुक्ता-फल[७] दिखलाय ॥८॥
स्वांति सलिल[८] को बिन्दु वहि, सीपी मुक्ता[९] होय ।
पाइ सुसंग कुसंग तिमि, उत्तम अधमहुँ जोय[१०] ॥९॥
नम्रभाव ऊँचे रहत, परगुण कथन करन्त[११] ।
पर निन्दा से दूर हैं, जानहुँ सच्चे सन्त ॥१०॥
नमत आम्र फल भार से, जलधर[१२] भूभुकि[१३] जाय ।
ऐसेहि उत्तम पुरुष सब, सबसे नमत सुभाय ॥११॥
शास्त्र श्रवण श्रुति[१४] शोभही, कुंडल पहिरे नाहिं ।
पाणी[१५] शोभत दान से, कंकण पहिरे नाहिं ॥१२॥
जल मिलतहिं गुण देत है, दुग्ध[१६] आपनो ताहि ।
जल रूपी पुनि मित्र को, आपु सरिस[१७] कर ताहि ॥१३॥
तोय[१८] मित्र संग रहन सें, पय[१९] को लगे न आंच ।
जल वियोग जब होत है, पय को पहुँचे आंच ॥१४॥
लखि वियोग निज मित्र को, पय अगनी महँ जाय ।
पाइ मित्र पुनि आपनो, लहि शान्ती ठहराय ॥१५॥

१—कान । २—पास । ३—गर्म । ४—पानी । ५—दीखता है । ६—कमल का पत्ता । ७—मोती । ८—पानी । ९—मोती । १०—देखो । ११—करते हैं । १२—मेघ । १३—ज़मीन । १४—कान । १५—हाथ । १६—दूध । १७—समान । १८—जल । १९—दूध ।

७–धैर्य[१]—

कभी भूमि पर शयन है, कभी पलँग पर शैन।
कभी शाक आहार है, कभि ओदन से चैन॥१॥
गुदड़ी ओढ़त है कभी, कभी दुशाला चीर।
धैर्यवान जो पुरुष है, सुख दुख सहै शरीर॥२॥
सम्पति भूषन[२] सजनता, मान त्याग[३] है ज्ञान।
तपभूषण क्षमता[४] शिलहिं[५], सर्व विभूषन जान॥३॥
नीतिवान नर को अहै, मानपमान[६] समान।
देखत है सब कहँ सरिस[७], कहत धीर सद् ज्ञान[८]॥४॥
आलस है नर को बड़ो, वैरी सुनहु सुजान।
उद्यम सम बन्धू नहीं, जासों हो दुख हान॥५॥

८–कर्म महत्त्व—

कर्म बड़ा बलवान् है, कर्म अहै[९] परधान[१०]।
देव दनुज[११] सब वश रहैं, चक्री इन्द्रहु जान॥१॥
कर्म भ्रमावे चहुंगती, कर्महि मानपमान।
कर्महि तें सुख दुख लहै[१२], कर्म बड़ो परधान॥२॥
कर्महिं के वश होइ के, ब्रह्मादिक बलवान।
सकल सृष्टि रचना करत, विवश कुम्हार समान॥३॥

१—गीता में कहा है कि–धृत्या यया धारयते, मन प्राणेन्द्रिय क्रिया। योगेनाव्यभिचारिण्या धृति सा पार्थ सात्त्विकी॥१॥ (अ० १८–३३) अर्थात् जिस दृढ़ धारणा से मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियायें समत्त्व बुद्धि से धारण की जाती हैं वह सात्त्विकी धृति है॥१॥ २—ज़ेवर। ३—गर्भ का छोड़ना। ४—क्षमा। ५—शील को। ६—मान और अपमान। ७—समान। ८—अच्छे ज्ञान वाले। ९—है। १०—प्रधान, मुख्य। ११—राक्षस। १२—पाता है।

विष्णु सरिस बलवान हू[1], लेत सदा अवतार।
महादेव हू कर्म वश, कर[2] में लिया कपार[3] ॥४॥
घर घर के भिक्षुक[4] भये, कर्महिं के संयोग।
सूर[5] भ्रमन नित करन है, कर्महिं के संजोग ॥५॥
रूप सुन्दरता कुछ नहीं, नहिं विद्या नहिं शील।
उद्यम मध्यम अधम हो, नर कर्महिं की लील[6] ॥६॥
पूरव जो तप कीन्ह है, करि उत्तम शुभ कर्म।
समय समय पै देत है, सुन्दर सुख वह कर्म ॥७॥
वनरन[7] शत्रु जलागनी[8], परवत[9] उदधि[10] के माहिं।
करत सुरच्छा[11] कर्म ही, दूसर कोऊ नाहिं ॥८॥
अन्य मती[12] भाषन करत[13], ईश्वर कर्त्ता होय।
आंख खोलि देखहु सुजन, कर्महिं कर्त्ता होय ॥९॥

६–आहार का अंग—

दोष उद्गमादि टालि के, उत्पातादि निवार।
एषणादि दश दोष हू[14], सब मिलि ब्यालिस टार ॥१॥
वृक्ष पुष्प से भ्रमर[15] जिमि[16], क्रमशः[17] रस को लेय।
नहिं पीड़त है पुष्प को, तिमि साधू भतलेय[18] ॥२॥
यही धर्म है साधु को, है सत साधू जोय।
लेत अहार विशुद्ध हीं, नहिं पीड़त है कोय ॥३॥

१—भी। २—हाथ। ३—कपाल। ४—भिखारी। ५—सूर्य। ६—लीला से। ७—रण, लड़ाई। ८—आग। ९—पहाड़। १०—समुद्र। ११—सुरक्षा। १२—दूसरे मत के लोग। १३—कहते हैं। १४ भी। १५ भौंरा। १६—जैसे। १७—धीरे धीरे। १८ आहार।

मम[१] वृत्ती[२] है भ्रमर सम[३], ले ह्वौं[४] विशुध[५] अहार ।
चहियत उत्तम साधुको, सन्तत[६] यही विचार ॥४॥
मधुकर वृत्ती[७] साधुकी, एषणि[८] लेवे भक्त[९] ।
सरस भक्तसे विरत[१०] हो, लेवे नीरस भक्त ॥५॥
जो साधू वह स्वादु[११] नहिं, स्वादू साधु न होय ।
जो साधू स्वादू हुवै, संजम कहँ ते होय ॥६॥
एक समय भोजन करे, कह्यो सूत्र के माँय ।
वार वार जो भोग ही, पापी श्रवण[१२] कहाय ॥७॥
उदक[१३] ग्रहन[१४] है यह।विधी, सुनहु चित्त मनलाय ।
शुद्धोदक जो लेत है, निर्मल साधु कहाय ॥८॥
साधु निमत्ते जल करे, मन राखे वह भाव ।
एक बुन्द वृद्धी करेहुँ, संयम होत अभाव ॥९॥
हलवाई के जाय कर, रागी करे उपाय ।
पाँच सेर जल खरच पर, दुगुना खरच कराय ॥१०॥
ऐसो जल लेनो नहीं, प्राण जाय तो जाय ।
सच्चा साधू जानिये, वही मुगति[१५] में जाय ॥११॥

१०-साधु का अंग—

साधू सोही जानिये, साधहि अपनी काय[१६] ।
नित समता[१७] में रमन कर, देत जलाय कषाय[१८] । १॥

१—मेरी । २—जीविका । ३—भौंरे के समान । ४—लूगा । ५—शुद्ध, निर्दोष । ६—निरन्तर । ७—भौंरे के समान जीविका वाला । ८—एषणीय, कल्पनीय । ९—भोजन । १०—निवृत्त । ११—जीभ का स्वाद लेने वाला । १२—साधु । १३—पानी । १४—लेने की । १५—मुक्ति । १६—शरीर । १७—सुख, दुःख, हानि लाभ, मान अपमान, निन्दा स्तुति, जय पराजय, सिद्धि असिद्धि, शुभ अशुभ, प्रिय अप्रिय, इष्ट अनिष्ट, मिट्टी और सोने की प्राप्ति या अप्राप्ति, इत्यादि द्वन्द्वों में अत्यन्त हर्ष शोक तथा रागद्वेष की वृत्तियों से उद्विग्न होकर मन में विक्षेप नहीं करना किन्तु एक रस रहना, यही समता है । १८—क्रोधादि ।

तप में शूरा साधु है, कहा सूत्र के मांय।
तप अगनी[1] दाहै[2] करम, चित्त समाधी लाय ॥२॥
पाप पन्थ को त्याग कर, मुक्ति पन्थ पगधार।
सर्व दम्भ को त्याग कर, सौम्य[3] गुणन को धार ॥३॥
संग सँसारी ना करे, करे न प्रमदा[4] संग।
निश दिन प्रभु में रत रहै, प्रभु में राखे रंग ॥४॥
सदा चित्त निरमल रखै, ज्यों गंगा को नीर।
पर अवगुण भाषै नहीं, सहै परीषह पीर ॥५॥
संजम में नित रत रहै, करि इन्द्री उपराम[5]।
तजे पराई वारता[6], वह साधु अभिराम[7] ॥६॥
साधु साधु सब कहत हैं, दुर्लभ[8] साधुता जान।
आतम अन्दर रमत[9] है, साधू तेहिं पहिचान ॥७॥
सज्जन रिपु[10] को एक सम, जानत है पुनवान[11]।
रागद्वेष को त्याग के, त्यागत मान गुमान ॥८॥
निज पूजन उत्सुक[12] नहीं, नहिं निन्दा में कोप[13]।
वाही को मुनिवर गनहु, मरजादा नहीं लोप ॥९॥
हानि लाभ में सम रहे, मूरछा[14] लेशहु[15] नाहिं।
पर उपकृति[16] में रत[17] रहै, रत है ध्यानहुं माहिं ॥१०॥
ऐसे साधू जगत में, करते पर उपकार।
निज स्वारथ को त्याग कर, परमारथ पग धार ॥११॥

१—तप रूपी अग्नि। २—जला देती है। ३—सुन्दर। ४—स्त्री। ५—शान्ति। ६—वार्त्ता, बातचीत। ७—श्रेष्ठ। ८—दुर्लभ, कठिन। ९—क्रीड़ा करता है। १०—शत्रु। ११—पुण्यवान। १२—इच्छा करने वाला। १३—गुस्सा। १४—आसक्ति। १५—ज़रा भी। १६—उपकार। १७—तत्पर।

आडम्बर को त्याग कर, करत आतमा शोध[१] ।
निज अवगुन त्यागत सदा, करत ज्ञान को बोध ॥१२॥

११-क्षमा[२] का अंग—

क्षमा बराबर तप नहीं, सब जग लीया जोय[३] ।
एक क्षमा के कारने, सब दुख जावे खोय ॥१॥
क्षमा सरवथा धारिये, कर्म होय चकचूर ।
क्षमा धारि सुखी रहै, करै कर्म रिपु चूर ॥२॥
नृपति प्रदेशी जो हुआ, केशी गुरु को पाय ।
छमा रूप धन आदरी, अमर विमाने जाय ॥३॥
हर केशी मुनि मोटे[४] भये, जाती थी चंडाल ।
नीच ऊँच कारन नहीं, मोक्ष गये ततकाल[५] ॥४॥
गज मुनिवर मोटे[६] भये, देवकि के अंगजात[७] ।
वाणी सुनि जिन नेम की, संजम[८] चित्त लगात[९] ॥५॥
कर जोड़ी ने वीनवे, सांभल[१०] कृपा निधान ।
उच्च गती मग देशना, करहु मोहिं भगवान ॥६॥
महाकाल शमशान में, भिक्खू[११] पडिमाधार[१२] ।
सोमल सुसरा देखिके, कोप कियो तिणवार[१३] ॥७॥
मस्तक[१४] पालज[१५] बाँध कर, खैर अंगारा थाप ।
मस्तक उज्ज्वल वे किया, किया न मन सन्ताप ॥८॥

१-खोज । २-किसी के द्वारा अपना अनिष्ठ हो जाने पर अथवा किसी आपत्ति के आजाने पर शान्ति के साथ सहन करना, बदले में अनिष्ट करने वाले को दु.ख वा हानि पहुँचाने का भाव उत्पन्न न करना तथा प्रारब्ध को न कोसना, इसी का नाम क्षमा है । ३-देख । ४-बड़े । ५-शीघ्र ही । ६-बड़े । ७-पुत्र । ८-सयम । ६-लगाया । १०-सुनो । ११-साधु । १२-प्रतिमाधारी । १३-उस समय । १४-सिर पर । १५-पाली, घेरा ।

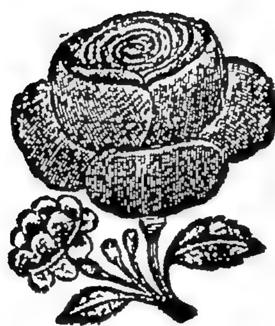
ऐसा मुनिवर मोटका[१], आतम कारज कीध[२] ।
क्षमा खड्ग कहँ धारिके, शिवपुर जलदी लीध[३] ॥९॥
खन्दक ऋषि मोटे भये, क्षमा कवच को धार ।
खाल उतारेहु देह की, क्रोध न किया लिग्यार[४] ॥१०॥
कहँ लग मैं वरणन करूं, जिन शासन के माँय ।
क्षमा धारि मुगती गया, तिन कर चरित कहाय[५] ॥११॥

१२—प्रभु-भक्ति—

ध्यानारूढ़ सुहोइ के, मुख सें कछु नहिं बोल ।
बाहरि पट[६] से कुछ नहीं, अन्दर के पट खोल ॥१॥
अरिहँत अरिहँत जाप सें, होत कछू नहिं सिद्ध ।
अन्तर रटना जो रटे, मुक्ति पहुँचे सिद्ध ॥२॥
यहि अवसर[७] चेत्या[८] नहीं, माया में लपटाय ।
प्रभू नाम कहँ भजा नहिं, गहरा गोता खाय ॥३॥
अरिहँत नाम भजा नहीं, करत कुटुंब परिपाल ।
विविध[९] धन्धमें पच रहा, चलता उलटी चाल ॥४॥
चार पहर धन्धों में बीते, तीन पहर रह सोय[१०] ।
पहर एक भोजन में खोया, मुक्ति कहाँ से होय ॥५॥
तेरी मेरी दिन गया, करत सोच भइ सांझ ।
पल भर प्रभु को ना[११] भजा, ता सुत[१२] तें भल[१३] बाँझ ॥६॥
दुनियां से बातें करत, होत ध्यान में भंग ।
यातें पकरि सुमौनको, प्रभु से राखो रंग[१४] ॥७॥

१—बड़े । २—किया । ३—लिया । ४—जरा भी । ५—कहा गया । ६—पड़दा । ७—मौक़े पर । ८—खबरदार हुआ । ९—अनेक प्रकार के । १०—सोता रहा । ११—नहीं । १२—उस पुत्र से । १३—अच्छी है । १४—प्रेम ।

लिये वस्त्र उज्ज्वल[१] पहन, जरदा पानहिं खात।
प्रभु को भजन किया नहीं, सीधा नरकहिं जात ॥८॥
ज्ञान दरश[२] नहिं साधना, नहिं संजम-आराध[३]।
अन्तर दृग[४] कीन्हें नहीं, कैसे चित्त समाध[५] ॥९॥
माला इमि[६] मन दीजिये, जैसे मेघहिं[७] मोर।
जो प्रभु में मन है नहीं, तूहिं बनेगो[८] चोर ॥१०॥
चंपा जो मोटी सती, गुरुणी मुझ हितकार।
उनकी किरपा ते रच्यो, लघु यह ग्रन्थ सुसार ॥११॥



१—उजले। २—दर्शन। ३—सयम की आराधना। ४—भीतरी नेत्र।
५—शान्ति सुख। ६—इस तरह से। ७—मेघ में। ८—बनेगा।

तीसरा प्रकरण।

१—उपदेश पद्य[1]—

❁ छंद घनाक्षरी ❁

पाई है मनुष्य-देह ताहिको तू लाहो[2] लेइ,
डार मत रयण[3] खेह[4] सुन मूढ़ बात रे।
अवसर तैं पायो अब मिले हैं समाज सब,
धरम करेगो कब आयू छिण[5] जात रे॥
ताही तें कहत गुरु धारिले तूँ सीख मन,
धरम मारग को सेव छांड़ि पक्षपात रे।
कहत ऋषि भज्जूलाल छांड़ि सब आलचाल[6],
अबहूँ क्यों चूक्यो लाल खूब गोता खात रे॥१॥
मात तात भ्रात सहु मिल्यो है कुटुम्ब बहु,
तूतो मत जाने कहुँ परिवार रे।

१—यह उपदेस पद्य श्रीमान् विद्वद्वर्य, साधु सद्गुण समलकृत, श्री जैन धर्म निष्णात; एवं जैन शासन मर्म वेत्ता श्री १००८ श्री भज्जूलाल जी महाराज के बनाये हुए हैं, ये महोदय पूज्य श्री श्री श्री १००८ श्री रतनचंद जी महाराज के पट्ट में संवत् १९२२ में विराजमान थे, तथा विशुद्ध भाव से श्री जैन धर्म का पालन करते थे, संवत् १९४३ में उक्त महोदय मुक्ति सौध पर आरूढ़ हुए।
२—लाभ। ३—रत्न को। ४—राख में। ५—आयु का समय। ६—टेढ़ी चाल।

अन्तर विचार देखि आयो है तूँ एकाएक,
इसमें नहिं मीन मेख[१] कहूँ हितकार रे॥
जीवित के साथी एह[२] मुवां पछे[३] तोड़ैं नेह[४],
देही को करैंगे खेह काढ़ि[५] घरवार[६] रे।
ताहीतें विचार मित्त[७] कुटुम्ब से तोर चित्त,
भज्जूलाल कहे नित्त धरम संभार रे॥२॥

छन्द त्रिभंगी।

द्वादश व्रतमानं करे प्रमाणं,
निरमल ध्यानं नियम करम्।
शुध मारग चाले दूषन टाले,
नहीं निहाले नार परम्॥
विद्यादिक वारे आतम तारे,
कारज सारे धरम रतम्।
ऐसे निज श्रावक पुण्य प्रभावक,
भजुपाविक स्वर्गगतम् ॥३॥
व्रत कूं नहिं खण्डे दूषन छण्डे,
आतम मण्डे धर्ममगम्।
करवे गुरु दर्शणं हे नित परसनं,
एक न तरसनं एक दगम्॥
नहीं गेली काली,
चतुर विशाली बुधिवन्ती।

१–सब। २–ये। ३–मरने के बाद। ४–स्नेह, प्रीति। ५–निकाल कर। ६–घर के बाहर। ७–मित्र।

श्रावकनी ऐसी भज्जू कहसी,
ओपम जैसी जयवन्ती ॥४॥
कलियुग के श्रावक कुटिल स्वभावक,
पाप प्रभावक नष्ट चितम् ।
धरम में नहिं रकता[१] नहिं गुरु भकता,
नारी तकता भक्त वितम् ॥
गुरु खोडल[२] काढ़े कलंक जु चाढ़े,
व्रत नहिं गाढ़े आपतणा[३] ।
भज्जूलालक हंदा सुण तूं बन्दा,
कुंभ भरंदा पापतणा ॥५॥
श्रावकनी बाजे सुक्ख समाजे,
गुरुणी साजे पाप करे ।
बहु दोष लगाड़े न्यात जिमाड़े,
धाड़े पात्र भरे ॥
गुरुणी के संगे व्रतपिण[४] भंगे,
नहिं को उरंगे एक कला ।
भज्जूलाल कहंतं परभव मंतं,
सहे विपत्तं नहीं हे भला ॥६॥
समता उरधारी कपट विदारी,
तजि हंकारी सुविचारी ।
जिण जाणी नारी नागनकारी,
संग निवारी ब्रह्मचारी ॥
नहिं देवे गाली क्रोध भी मारी,
गुण भण्डारी आचारी ।

१–अनुरक्त । २–दोष । ३–अपना । ४–भी ।

एहवा[१] अणगारी[२] पर उपगारी,
भज्जु वारी बलिहारी ॥७॥
गुण करि ने पूरी नहीं अधूरी,
तप में सूरी दीपंती ।
नहिं भाषा की सच्ची न होवे कच्ची,
शीले रच्ची मतवंती ॥
समता गुण सोहे ममता मोहे,
नयन न जोहे[३] पुरुष समो[४] ।
भज्जूलाल संज्ञा एहवी अज्ञा,
शीस नमज्ञा इन्द्री दमी ॥८॥
कोई भस्म रमावे कोइ शिव ध्यावे,
कोइ गुन गावे हरजी का ।
कोइ गंग नहावे मुंड मुड़ावे,
भेष लहावे[५] जोगी का ॥
कोई पवन अहारी दूधाधारी,
कोइ वनचारी कोदण्डी ।
भज्जू लाल प्रवीनं तप्पस्सजीनं,
ज्ञान विहीनं पाखण्डी ॥९॥
कोई चैत[६] करावे जीव हणावे,
धर्म बतावे उस्टंडी[७] ।
पाषा नहिं विम्बंकर बहु डिम्बं,
जिणंद कहीवं मनतंडी ॥

१–ऐसा, २–साधु । ३–देखती है । ४–पुरुष के सामने । ५–लेता है ।
६–मन्दिर । ७–मर्यादा का नाश करने वाला ।

नहिं ज्ञानं ध्यानं तप्पनिधानं,
नहिं मुख बालं वीत्ताणम्।
भज्जूलाल वखाणं सुण सुत ज्ञानं,
केवल ज्ञानं जाणं पाषाणम् ॥१०॥

घनाघरी।

करम कमावे भारी काम करे दुचारी,
नैनन से करे यारी नाम लेत समाई[१] को।
मूस पै मंजारी[२] जैसे चोट करे दृष्टि डारी,
तैसे अविचारी काम करत अन्याई को॥
ऊपर से धर्मधारी माहें पाप की पिटारी,
पीछे होयगी खबारी लेखो लेत राई को।
धर्म में करत जारी कहे भज्जू अणगारी[३],
हूँहा हुतो हुवे नाहीं राज पोपा बाई को ॥११॥
कीन्ही है समाई तामें समता न भाव कछु,
कीन्ही है कमाई एक सुनो चित्तलाई है।
एक कहे सुनो बाई कीन्ही है सगाई आज,
एक कहे भोजन में लून[४] अधिकाई है॥
तातें लर्यो[५] पति मेरो कीन्ही न सामाई काल,
एक कहे पूत मेरो दुखदाई है।
वखाण में मिले तहाँ एहवो कथन कहै,
भज्जूलाल ऋषि ताकी फोकट[६] कमाई है॥१२॥

१—सामायिक। २—बिल्ली। ३—साधु। ४—नमक। ५—लड़ाई की।
६—व्यर्थ।

पढ़े नवकार मन्त्र घरहू को काम करे,
पुत्रन रमावे[१] सार[२] करै द्वार की।
लीन्हीं कर माहीं माला मेटो नहिं पाप जाला,
कुतराने झीझकारा करे निन्दा पारकी॥
तार्यो चावे[३] भवकूप[४] कैसे तू उतरे पार,
क्रोध करै बहुतेरो गाल काढ़ै मार की।
कहै भज्जू अणगार हुओ चाय[५] भव पार,
योग थीरधार माला गुणो नवकार की॥१३॥
पञ्च इन्द्री वश करे नवनिधि ब्रह्मचरे,
पञ्च महाव्रत धरे कषाय कुँटारी है।
सुमति[६] आचार पञ्च त्रण गुप्त[७] सुधसंच,
टार रहे परपंच सहु[८] सुखकारी है॥
ऐसे गुरु मुनी जोवे देव तो अरिहन्त सेवे,
देखत अलोक लोपे गुन दे भंडारी है।
जीव दया धर्म गहे तीनूं तत्वसरदहे[९],
कहै भज्जू ऋषि वही समकित[१०] धारी है॥१४॥
नारी के निहारते विचार सहु भूल जावे,
नारी के निहारते तो शील गुण खात है।
नारी के निहारते विचार सहु[११] भूल जावे,
नारी के निहारते अज्ञान भाव आत है।
नारी के निहारते सुरवीर धीर धरे लोहनकी,
मार जैसे आग ठहरात है॥

१—खिलाती है। २—संभाल। ३—तैरना चाहता है। ४—ससार रूपी कुआ। ५—होना चाहता है। ६—समिति। ७—गुप्ति। ८—सब। ९—श्रद्धा रक्खे। १०—सम्यक्त्व धारी। ११—सब।

ऐसी नारी नागिनी को नेणन[1] को बीस[2] जीते,
भय है अतीत[3] मुनी जगत में विख्यात है॥१५॥
जोगीहू की जोगाई जाय साधु की सिधाई जाय,
बड़े की बड़ाई जाय रूप जाय अंगसों।
ज्ञानी हूं को ज्ञान जाय ध्यानी हूँ को ध्यान जाय,
मानी हूं को मान जाय धरम जाय रंगसों॥
घर की सुऋद्धि जाय जगमें प्रसिद्धि जाय,
उतपात बुद्धि[4] जाय विकल होय ढंगसों।
संजम का भार जाय ज्ञान का उचार जाय,
ए तप गुण भार जाय एक तिरिया[5] के संगसों॥१६॥
टूटो सो छपर घर बील[6] हैं अनेक ठौर,
नोल[7] कोल[8] मूसा बिल जीवन समेत[9] हैं।
खाट एक उणरेपाय गुदड़ो बिछाय जूणों जूं,
लीख चांचड़ माकड़ जीवन समेत हैं॥
काणी सीक[10] को दातार[11] ताहूं पर नेह घणो,
जानि सुख आपन को मौज मान लेत है।
ताही में उरझ रह्यो माने नहीं गुरु कह्यो,
मान को मरोड़ो जीव कबहुँ न चेत है॥१७॥

१—नेत्रों का। २—विष। ३—नष्ट। ४—औत्पत्ति की बुद्धि (जो न देखे और न सुने हुए विषय का भी अपनी तीक्ष्णता के द्वारा तत्काल ग्रहण कर लेती है उसे औत्पत्ति की बुद्धि कहते हैं)। ५—स्त्री। ६—बिल, छेद। ७—नेवला। ८—बिला। ९—जीवों के सहित। १०—फूहड़। ११—स्त्री।

२—भक्ति-पद्य-भाषा—

भज हरिहन्तं भज अरिहन्तं।
अरिहन्तं भज मूढ़ मते॥
प्राप्त भया है सन्निधि[१] मरणा।
स्वजनों का नहिं कोई शरणा॥टेक॥

बालक था तब खेल में लागा।
युवा[२] होय तरुणी[३] मन पागा॥
वृद्ध भया तब चिन्ता लगहीं।
तोहुं न श्री अरिहँत मन लगहीं॥१॥

पाया जन्म है पुनि पुनि[४] मरना।
पुनि पुनि जननी[५] उदर[६] है वसना॥
यह संसार अति दुख खाना।
आपहिं तारो श्री भगवाना॥२॥

अङ्ग गला शिर श्वेत भया है।
मुख का दशन[७] सब निकल गया है॥
वृद्धपने में दण्ड[८] लिया है।
आशाभंडन छोड़ दिया है॥३॥

जटा बँधाय बन्यो पाखण्डी।
बाल उखारत राखत संडी॥
पेटार्थी बन मांगत टुकरा।
रागद्वेष में फंसा जु डुकरा[९]॥४॥

१—समीप। २—जवान। ३—युवति, जवान स्त्री। ४—बारबार। ५—माता। ६—पेट। ७—दाँत। ८—डण्डा, छड़ी। ९—डोकरा, बूढ़ा।

मात पिता के मोह में लागहिं।
भ्रात पुत्र नारी संग पागहिं॥
निर्गुणि नारी से बहु प्यारहिं।
क्यों करहो भव जल[1] से पारहिं॥५॥
बारू महँ नहिं पावहि तैलहिं।
मिलै न मृग तृष्णा महँ सलिलहिं[2]।
भटकत पावै न अश्व[3] सश्रृंगा[4]॥
तोभी सुद्ध न मूरख धिंगा॥६॥
किञ्चित् पाया है कुछ ज्ञाना।
मस्त भया करिवरहिं[5] समाना॥
कुछ कुछ संग किया विद्वाना।
मन भयो तब मेरु समाना॥७॥
अग्नि शान्त होवे जल द्वारा।
सूर्यताप[6] नश छत्रहिं[7] धारा[8]॥
व्याधि नशे भखि औषध खाये।
धीठ न समझे संगति पाये॥८॥
विद्या तप नहिं ज्ञान निदाना।
शील न संयम धर्म न ध्याना॥
पृथिवी पर वह भार समाना।
मनुजरूप[9] धरि पशू समाना॥९॥
पर्वत कन्दर[10] माहिं निवासी।
वनचर माहिं वसत सुखवासी॥

१—संसार रूपी जल। २—पानी। ३—घोड़ा। ४—सींग वाला। ५—हाथी के। ६—सूर्य की धूप। ७—छाते को। ८—पकड़ने से। ९—मनुष्य रूप। १०—पहाड़ की गुफा।

इन्द्रलोक के स्वर्ग मझारो[१] ।
मूरख जन का संग निवारो ॥१०॥
चन्द्रोज्ज्वल[२] सम मोतियनहारा ।
स्नान विलेपन शोभ अपारा ॥
चारु[३] सिंगार जान[४] सब भारा ।
ज्ञान बिना नहिं शोभ गँवारा ॥११॥
ज्ञानी जन सबका सिरदारा ।
ज्ञान गुणधन होय अपारा ॥
याहि लोक महिमा बेपारा ।
परहि लोक मिल मोच्च दुआरा ॥१२॥
गुरु विन ज्ञान न कबहूं पावे ।
गुरु भक्ती से पाप नसावे ॥
चम्पा गुरुणी सेव करी है ।
भूरी सुन्दरि तसु[५] अनुचरी[६] है ॥१३॥

भज सिद्धाणं भज सिद्धाणं ।
भज सिद्धाणं शुद्ध मते ॥
उर्ध्वलोक में जाय विराजे ।
लोक अग्र में जाय विराजे ॥
निर अंजन अरु नीर अकारा ।
तसु गुण का नहिं पावहिं पारा ॥१॥
पैंतालीस लाख योजन माना ।
लम्ब बहुल सम छत्र[७] समाना ॥

१—में । २—चन्द्रमा के समान उजले । ३—सुन्दर । ४—जान लो । ५—उनकी । ६—दासी । ७—छाता ।

मध्यभाग अठ जोजन[१] जानो ।
मखी पांख पतली अवसानो[२] ॥२॥
एक कोश के भाग छठें में ।
सिद्ध बिराजे जोति जये में ॥
अजर अमर पद अनंत अपारा ।
बन्दहिं भविक[३] जन बारंबारा ॥३॥
वर्णगन्ध रस फरस नहीं है ।
संठान संघेन कलेश नहीं है ॥
अष्ठ कर्म का नाश भया है ।
संसारिक सब त्रास[४] गया है ॥४॥
अनन्त ज्ञान अरु दर्शन राजहिं ।
परमानन्दहिं क्षायिक साजहिं ॥
चाकर ठाकुर और न दासा ।
खान पान नहिं भूख न प्यासा ॥५॥
रात दिवस नहिं सूरज चन्दा ।
ज्योति मध्य ज्योति दीपन्दा ॥
देखहिं तीन लोक तामासा[५] ।
आवत नहिं चित्त उपहासा ॥६॥
महिमा तिनकी अपरंपारा ।
सुर गुरुहू[६] नहिं पावहिं पारा ॥
ज्ञान धूप और श्रद्धा पुष्पहिं ।
चारित दीपक तपसा तापहिं ॥

१–योजन, चारकोस । २–जान लो । ३–भव्य । ४–भय, डर ।
५–तमाशा, कौतुक । ६–बृहस्पति भी ।

छमा निवेद्य जगत में सारहिं ।
भाव पूज मन बारंबारहिं ॥७॥
भूर सुन्दरी दोउ कर जोरहिं ।
दूर करो मुझ भवदधि फेरहिं[१]॥
मन वच काय करो शुभ ध्यानम् ।
मैल कर्म तज हो सिध मानम् ॥८॥
पाँचों इन्द्री वश कर राखहिं ।
नौ वृति[२] विशुध शील कहँ राखहिं ॥
चार कषाय को करते खायक ।
बन्दूँ आचारज[३] सुख दायक ॥९॥
पञ्च महाव्रत निर्मल पाले ।
ज्ञान दरश चारित उजवाले ॥
आत्म शक्ति युत[४] तप संभाले ।
जिनवर भाषित मग[५] में चाले ॥१०॥
ईर्यादी सब समितिहिं पालहिं ।
तीन गुप्ति कर शुध मन चालहिं ॥
चंचल मन है पवन[६] समाना ।
रुकहि नाहिं गति कीर सुजाना ॥११॥
चौफरसी वुनि चेतन रोकहिं ।
शिवपुर जाता देवे धोकहिं[७] ॥
इंगल पिंगल नाड़ी झोकहिं ।
मन रोके मिल ऊरध लोकहिं ॥१२॥

१—संसार समुद्र में भ्रमण को । २—बाड़ा । ३—आचार्य । ४—अपनी शक्ति के साथ । ५—मार्ग । ६—वायु । ७—प्रणाम ।

ऊठत बैठत हालत चालत।
जानततहँ[1] करमहिं सब टालत[2]॥
शुद्ध आतम को राखि उजालहिं।
मुक्ति पहूँचै, तहं नहिं कालहिं ॥१३॥
अष्ट वचन तसु नित्यहिं होवैं।
गुण आचारज छत्तिस होवैं॥
संघपती है करले पालहिं।
ज्ञान बुद्धि कर पाखण्ड गालहिं[3]॥१४॥
सुरगण मुनि जन पाव न पारहिं।
वंदन करि हौं बारहिं बारहिं॥
जन्म मरण दुख मेटन हारहिं।
भूरि सुन्दरी नित उर धारहिं ॥१५॥

पच्चिस गुणधारी महिम अपारी।
दोष निवारी सुखकारी॥
पढ़ै ग्यारा अङ्गहिं दे सुख चंगहिं।
दुर्गति भंगहिं जिन गंगा ॥१॥
समकित रूप रतन के त्राता।
है सब के शुभ सद्गति के दाता॥
जैन धर्म माहात्म्य[4] बढ़ाते।
सूत्र अर्थ को शुद्ध कराते ॥२॥

सत्ताइस गुण धारक चारित पालक,
दोष निवारक ध्यान धरैं ॥१॥

१—ज्ञान दशा में। २—दूर करते हैं। ३—नष्ट करते हैं। ४—महिमा को।

महाव्रत पालक इन्द्रियगालक[१],
कषाय टालक[२] शान्ति करैं ॥२॥
पर कार्यन के होवहिं साधक ।
प्राण दशों का जो नहिं बाधक[३] ॥३॥
रागद्वेष क्षय करते सूरा ।
सहन परीषह में हों सूरा[४] ॥४॥
धोरी सम है वृत्ति निवाहक ।
मौन करत नहिं बोलत नाहक ॥५॥
मुनि जन की जो संगति पावैं ।
अजर अमर में लय हो जावैं ॥६॥
भूर सुन्दरी करत विनति इम ।
शरण लिया तव देर करो किम ॥७॥
भव जल पार लगाओ स्वामी ।
मम आतम करु[५] शिवगति गामी[६] ॥८॥
नमामि नमामि नमामि नमामि ।
जपामि जपामि जपामि जपामि ॥९॥

पाव कुलक ।

अतिशय चौंतिस जसु[७] वपु[८] राजहीं ।
पैंतीस गुण वाणी के छाजहिं ॥
सहस आठ लक्षण के धारक ।
श्री श्री अरिहन्त बहु परिवारक ॥१॥

१—इन्द्रियों का दमन करने वाले । २—कषायों को दूर करने वाले । ३—बाधा पहुँचाने वाले । ४—शूरवीर । ५—करो । ६—शिवगति में जाने वाला । ७—जिनके । ८—शरीर में ।

अष्टादश दूषण से रहितहिं ।
द्वादश गुण कर सदा सहितहिं ॥
लोक अलोक को जानत भेवहिं[1] ।
चौसठ इन्द्र नित्य प्रति सेवहिं ॥२॥
वृक्ष अशोक की हो तहिं छाईं ।
पुष्प वृष्टि जस खूब रचाईं ॥
दिव्य धुनी से मधुरहिं गावहिं ।
युग्मचरण द्युति[2] वरणि न जावहिं ॥३॥
सिंहासन पर प्रभु जी बिराजहिं ।
भामण्डल छवि सुन्दर छाजहिं ॥
देव दुंदुभी बाजा बाजहिं ।
तीन छत्र की शोभा छाजहिं ॥४॥
दरशन ज्ञान अनन्त कहीजे ॥
पुनि बल चारित अनन्त लहीजे ॥
ऐसे जिनवर दर्शन देवहिं ।
करूं त्रिकाल त्रिकालजु सेवहिं ॥५॥
इनका ध्यान करूं मन लाई ।
सुमिरन करते अघ[3] नशि जाई ॥
ऐसे ईश बसहु उर मेरे ।
भूरि सुन्दरी जो पुण्य घनेरे ॥६॥



१–भेद को । २–प्रकाश । ३–पाप ।

चौथा प्रकरण

१–स्तवन संग्रह—

❀ राग सारंग ❀

एरी मैं तो करूँ री प्रभु जी का ध्यान ॥टेक॥
जित जाऊं उत कुमती पाऊँ,
कैसे लेऊँ मुक्ति वास री ॥१॥एरी०॥
संसार के तीर मोह मुझ जान न देवै री,
इन छोड्या झट शिव मग पावे।
गावे भूरसुन्दरी खास री ॥२॥ एरी० ॥

राग कालिंगड़ा।

विधना की जानत बलाय,
पीर चालत दरद की अरररर ॥विधना०॥टेक॥
मैं विरहिन विरहा की माती[1],
आवेंगे श्याम करेंगे बाती।
इतने आई जोग की पाती,
बाँचत ही मुरझाय सूख गई सररर।
विधना की० ॥१॥

१–बावली।

एक दिन सखियां आई मिलि दौरी,
राजल सुण तूं वैना।
भोरी इतनी सुण अंसुवन की डोरी,
मोतियन की लड़ टूट टपक गइ खररर।
विधना की० ॥२॥
भव भव की मेरी प्रीति जु होती,
मुक्ति धूतारी काने चेती।
भूर सुन्दरी कर्मों को धोती,
आवागमन मिटायक तिरहुँ तररर अररर।
विधना की जाणे न बलाय ॥३॥

केदारा।

कोइलिया कूक सुनावे रे, कोइलिया।
मोह को विरह[1] सतावे ॥ १ ॥
निश[2] अंधियारी कारी विजली चमक,
जिया मोरो डरपावे ॥ कोइ० ॥ २ ॥
इतनी विनती मोरी उतपै कहियो जाय,
नेमी विन जिवड़ा तरस्यो ही जाय।
उमड़ घटा पर मोरी आली,
मेरो सइयाँ घर न आवे ॥ कोइ० ॥ ३ ॥
जीरा जलसूं न मूर्छा गत ल्यावे,
नेम प्रभू गिरनार सिधावे।
भूरसुन्दरी अरज गुजरिया,
प्रभु चरणों चित लावे रे ॥ कोइ० ॥ ४ ॥

१–वियोग। २–रात्रि।

राग बरवा।

जिन जाओ री आज कोइ भजन करन।
ठाड़ो मग में छैल शिवपुर की गैल,
एक एक से कुमत बाता करे तक तक ॥जिन०॥१॥
शीस[१] घूमन लागो, पिंडरी कम्पन लागी,
मेरी जरा से करण लागी छाती धक धक॥जिन०॥२॥
भूरसुन्दरि याको योंही ढंग रहलो,
तारी देत बूढे की बाला हँसे बक बक ॥जिन०॥३॥

मलार की ठुमरी।

आली[२] लख[३] घनन घनन घन[४] गरजत। बरस बरस वारी झरस झरस चमक बीजली चमकत॥आली लख घनन घनन घन गरजत ॥१॥

बोलत मोर पपैया कोयल, नेम श्याम विन कल नहिं एक पल। राजल दरशन देह आयके तरस तरस जिया लरजत॥ आली लख घनन घनन० ॥२॥

भैरवी दादरा।

सुणता जाइयो रे भवजीओ,
शिक्षा ज्ञान ज्ञान की ॥टेक०॥
अनन्त काल को चेतन धेठो[५],
माने नहीं वीतराग राग की ॥सुणता०॥१॥

१–शिर। २–सखी। ३–देखो। ४–बादल। ५–ढीठ।

ज्ञानादिक रतनत्रय को धारो,
बाजी तो लगेगी मुक्तिजान जानकी॥सुण०॥२॥
दानादि चहुं भेद को सेवो,
कीर्त्ति बढ़ेगी अपरम्पार पारकी ॥सुण०॥३॥
भूर सुन्दरी की अरजी अवधारो,
मेरी इच्छा है भव पार पारकी ॥सुण०॥४॥

राग भैरवी।

ऐसो है रे भाई अमर पद ऐसो है रे भाई ॥टेक॥
काल व्याल कबहूँ नहिं व्यापे, खोड़ लगे नहिं काई।
देत लेत कबहूँ नहिं बीते, दिन दिन बढ़त सवाई ॥
ऐसो है रे ॥१॥
संजम दुकान जिन्होंने खोली, ढूँढ़त ढूँढ़त पाई।
ऊँच नीच या राजा राणा, सबही को मिलि जाई ॥
ऐसो है रे० ॥२॥
हर केशी जी ने यो वित मिलियो सहजहिं सन्त कहाई।
केवल ज्ञान रूपि धन मिलियो उतराध्ययन में गाई ॥
ऐसो है रे० ॥३॥
जो प्रभु को निश्चय करि सुमिरो,तौ दुरगत कबहूँ ना जाई।
भूरसुन्दरी का कथन जो मानो, तो अजर अमर होजाई॥
ऐसो है रे भाई० ॥४॥

राग बरवा।

कैसे जाऊँ रे वीर संसार के तीर पड़ी मोह की जंजीर
जिया धरत न धीर। कैसे जाऊँ रे वीर ॥ टेक॥

कर्मोंहु के जन्त्र में, काठियों के तन्त्र में, तन्त्र ही के मन्त्र में, भई हूं फकीर ॥कैसे०॥१॥

मैं तो प्रभु जी को करत हूँ निशदिन याद, इन कर्मों से रहेगी कैसे लाज। मनवा[1] धरत न धीर ॥ कैसे जाऊँ रे वीर ॥२॥

मल्हार ।

बादरवा बरसे सखी ज्ञान बादरवा ॥टेक॥
तपस्या चमकत चहुँ दिसि अकास अब कटत करम।
काली काली घटा न ध्यान बुन्दहु ते बरसे लटान ॥
बादरवा ॥१॥

उमड़ घुमड़ नाना पाखंड आये रंग अपार।
अनेक दिखाये ज्ञान झर लग्यो छुम छनन छनन ॥
सुमति परविया[2] चाले सीरी[3] सननन।
अब मौन धार पाखंड धरन पर सघन सबर लहरे
अटान ॥बादरवा०॥२॥

राग आसावरी ।

सोच समझ दिल माहीं चेतन,
प्रभु नाम से फिर हटना क्या रे ॥टेर॥
साधू बनि घर घर के टुकड़े,
वासी और सलूणे क्या रे ॥सोच समझ॥१॥
गंगा यमुना में क्यों पड़ते हो,
निरमल मन का धोना क्या रे॥सोच समझ॥२॥

१-मन । २-पूर्वीय वायु । ३-शीतल, ठढी ।

मिथ्या नींद में जन्म गमायो,
आशिक होय फिर सोना क्या रे ॥सोच०॥३॥
भूरसुन्दरी कहे सुनो भव प्रानी,
भवसागर फिर रुलना[1] क्या रे ॥सोच०॥४॥

राग माड़।

सुन चेतन प्यारा करो रे समायक सार ॥टेर॥
समता रस को पिय लेरे, करो नी आतम काज।
आंक एकले बीस कोरे, श्रीजिनदियो फरमाय ॥
सुन चेतन० ॥१॥
दोय करन तीन योग से रे, करो शुद्ध पचखान[2]।
विकथा चारों परिहरो रे, दोष बत्तीस निवार ॥
सुन चेतन० ॥२॥
करो दलाली सामायिकनी रे, इण से पद निरवान[3]।
परम धर्म ये संचिये रे, भूरसुन्दरि गुनगाय ॥
सुन चेतन० ॥३॥

संगीत।

आज अपछर नाचे संगीत।
विविध भाँत गत नइयो, आज अपछर नाचे संगीत ॥
बाजत मृदंग सरस भेदन से, ताकिट धुमकिट तक तक धुमकिट तकधि द्राग धूमकिट तकधा। धी धी कटधा धीधी कटधा, कटधा कटधा थेइये थेइ ॥ अपछर नाचे संगीत ॥१॥

१–घूमना। २–प्रत्याख्यान। ३–निर्वाण, मोक्ष।

तापर पग नेपुर[१] धुन बाजत थिरर थिरर धिंग निंग
निंग निंग निंग थेइये थेइ अपछर नाचे संगीत ॥२॥

राग कालिंगड़ा ।

मैं तो जिन प्रभु को ढूँढ़न चालिया,
मैं तो प्रभु को ढूँढ़न चालिया ॥टेर॥
सदर बाजार में सब ही ढूँढ़ें,
अरे ढूँढ़ फिरी सारी गलियां रे॥ मैं तो०॥१॥
तन कुम्हलाय गयो मुख मुरझाय गयो,
जैसे गुलाब की कलियां रे॥ मैं तो० ॥२॥
कोई कहियो मेरे जिनजी से जाके,
भूर सुन्दर तुम चरणों पड़िया रे॥मैं तो०॥३॥

राग मांड ।

पडकमनो[२] करो शुद्ध भाव सुँ दोय घड़ी धर्म ध्यान।
सुनो छो श्रावक म्हारा ॥१॥
पाप अठारा ने छोड़ी ने समकित[३] शुद्ध अराध।
सुणो छो० ॥२॥
सामायिक आवश्यक पहिलो द्वितीये चोविस्थो सार।
सुणो० ॥३॥
तृतीये वन्दन कीजे निरमलो पांचो ही अङ्ग नमाय।
सुणो० ॥४॥

१—नूपुर । २—प्रतिक्रमण । ३—सम्यक्त्व ।

चौथो आवश्यक प्रतिक्रमण छे, पाप को करो परिहार[1]।
सुणो० ॥५॥
काउस्सग[2]आवसग[3]पांचमो जतनासुं अङ्ग सकोच ।
सुणो० ॥६॥
तीन करन तीन योग से शुद्ध चित ध्याओ धर्मध्यान।
सुणो० ॥७॥
छठा आवसग[4] इम करो आगम काल ना पचखाण ।
सुणो० ॥८॥
प्रत्याखान ये जाणिये आश्रव दिया सब रोक।
सुणो० ॥९॥
संवत् उन्नीसै तियासी साल में भरतपुर कियो चौमास।
सुणो० ॥१०॥
प्रतिक्रमण करो विधिपूर्वे इन्द्र कहे चितलाय ॥
सुणो० ॥११॥

राग ।

कपूर हुवे अति उजलो रे ।

ए बंदे कर बन्दगीरे, मन बस काया बस आण ।
दौलत में फंसना नहीं रे, ए जिन्दगी दिन चार ॥
चतुर नर मेरी अरज अवधार ॥टेर॥१॥
चशम[5] खोल देखो तुमे रे, अन्तर दृष्टि पसार ।
कहाँ गये चक्री हलधरा रे, उनका कहाँ दर्बार ॥
चेतन जी० ॥२॥

१—निवृत्ति । २—कायोत्सर्ग । ३—आवश्यक । ४—आवश्यक । ५—नेत्र ।

रंग महल वो कहाँ गया जी, कहाँ गज[१] असवार।
कहाँ चमर वो छत्र है जी, कहाँ वो सरकार॥
चेतन जी० ॥३॥

यारों की यारी गई जिन ही भइयो मैं बफादार।
स्वारथ की मुहबत[२] रही जी किसको झुरे तू गँवार॥
चेतन जी० ॥४॥

भूर सुन्दरी इम उचरे जी, वृथा जन्म मत हार।
तू तू मैं मैं छोड़ने जी, कर लो ज्ञान विचार॥
चतुर नर कर लो ज्ञान विचार ॥५॥

चाल नाटक।

ऐ मुसाफिर जाग जाग जाग जाग रे।
जागने में खूब ही बहार रे॥
ऐ मुसाफिर जाग जाग जाग रे ॥टेर॥

रतन तेरे पास हैं बहु मोल रे।
रातरि[३] का बखत तेरे शीघ्र आया लागरे।
ऐ मुसाफिर० ॥१॥

मादर[४] पिदर[५] फरजंद[६] ये सबही असार रे।
स्वारथ की तू कर तैयारी समझे ना गँवार रे॥
ऐ मुसाफिर० ॥२॥

थोड़ी सी है जिन्दगी तुझे इतना गरूर रे।
काबुल तो पीछे छोड़ी, धौलपुर का ठाठ रे॥
ऐ मुसाफिर० ॥३॥

१–हाथी। २–स्नेह, प्रीति। ३–रात्रि। ४–माता। ५–पिता। ६–पुत्र।

जागता शेर है सोता है मोर रे।
जागते से भागते हैं पाँचों ही चोर रे ॥ऐ मुसाफिर०॥४॥
कहे भूरसुन्दरी सुनो मेरे भ्रात रे।
लख चौरासी फेरा टाल टाल रे ॥ऐ मुसाफिर०॥५॥

तर्ज चाल

पूत सपूता क्या धन संचै।

श्री ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन,
सुमति पदम सुपासो जी।
श्री जिनवर नित वन्दिये तुम,
चरनन चित लाग्यो जी॥
चन्द शीतल श्रीहंस[1] वास पूज्य,
विमल विमल जगीसो जी ॥श्री०॥
अनन्त धर्म श्रीशान्ति जिनेश्वर,
साता वरताय संसारो जी ॥श्री०॥
कुन्थू अरु मल्लिमुनि सुव्रत जी,
नेमि अरिष्ट सुख रासो जी ॥श्री०॥
पार्श्वनाथ वर्धमान जिनेश्वर,
जिन शासन सिरदारो जी।
संकट चूरण विघन निवारण,
तुम महिमा अपरंपारो जी ॥श्री०॥
संवत् उन्नीसै साल तियासी,
भर्तपुर नगर चौमासो जी।

१—श्रेयास।

गुरुनी भूरसुन्दरी गुण रत्नागर,
काम क्रोध परिहारो जी ॥श्री०॥
तसु चरणाम्बुज[१] इन्द्रमती विनवे,
मेरा करो न उधारो जी ॥श्री०॥
कलमल पंख पंखालवा,
तुम दर्शन चित म्हारो जी ॥श्री०॥

२—भजन संग्रह—

महासती गुरुनी सांभलो जी,
दीपायो मारग जैन को ॥टेर॥
जम्बू द्वीप के भरत में,
स कोई ग्वालियर शहर सुखकार ।
अगरवाल कुल शोभता,
स कोई परम महा सुखकार हो ॥१॥
संवत् १८८७ में,
स कोई माघ महीनो सुखकार हो ।
नव बरस में,
स कोई संयम में चित धार हो ॥महा०॥२॥
महासती श्री राय कुँवर जी,
तप संजमरी गुण खान हो ।
हाथ जोड़ने बीनवे,
स कोई तारो कृपानिधान हो ॥महा०॥३॥
पञ्च महाव्रत आदर्या,
स कोई परिणाम खेरे उधार हो ।

१—चरण कमल ।

निरवद्य भिक्षा आदरे,
स कोई दोष वयालीस टार हो ॥महा०॥४॥
उग्र विहारज विचरता,
स कोई भव जीवाँ ने हितकार हो ।
तप किया अति आकरा[1],
स कोई कर्म काटन को साध हो ॥महा०॥५॥
अठारा महीना तप किया,
स कोई दोय पैंतालीस सार हो ।
उत्कृष्टा इक्यावन किया,
स कोई बहुत किया उपकार हो॥महा०॥६॥
छोटी तपस्या बहुत करी,
स कोई कहताँ न आवे पार हो ।
पाँचौ इन्द्री वश करी,
स कोई कर दिया खेवो पार हो ॥महा०॥७॥
संवत् १९६२ में,
स कोई आसौज मास के मांय हो ।
संथारो कियो भाव सुँ,
स कोई अति आनन्द के माँय हो॥महा०॥८॥
आसौज बदी पंचमी,
स कोई पहुँच्या स्वर्ग के मांय हो ।
आरज्यांजी श्री भूरसुन्दर जी गुण गावतां,
स कोई लुललुल लागूं पाँयहो ।
महासती गुरुनी सांभलो जी,
दीपायो मारग जैन को ॥९॥

१—कठिन ।

चाल -लावनी ।

चेतो चेतो जलदी मुसाफिर गाड़ी जाने वाली है ॥टेक॥
पुद्गल द्रव्य की रेल बनी है, मन अञ्जन ले जाता है।
इन्द्रियगण के पहियों से वह खूब ही तेज चलाता है॥
चौदराजु[१] चलने पर भी, थकने वह नहिं पाता है।
बड़े गार्ड मुनिराज बने हैं, याकी करे रखवाली है॥
चेतो० ॥१॥

क्रोध मान अरु माया लोभ तो, चार बने अस्टेशन हैं।
आठौं याम[२] चले है यामें, मोह बड़ा सा इञ्जन है॥
कर्म तोड़ कर ज्ञान टिकट ले, शिवका मारग सीधा है।
फर्स्ट सेकिण्ड अरु थर्डक्लास का, ज्ञान दरस तप लीधा है॥
मिथ्यात्विक बैठन नहिं पावे, वह इस धन से खाली है।
चेतो० ॥२॥

नाड़ी तार खबर देती है, विविध रूप से सभ्ती है।
तीन घंटिका बाल तरु[३] अरु जरा[४] की, इसमें बजती है॥
तीसरी घंटी होने पर झट, अपनी जगह को तजती है।
आती जाती सीटी देकर, रोती और चिलाती है॥
वीर धर्म की लाइन छोड़ कर शीघ्र बिगड़ने वाली है।
चेतो० ॥३॥

ज्ञानदर्श तप संयम वंडल, अवसर साथ हि रखती है।
तेरा काठिया चोर प्रमाद का, मन में भीती[५] रहती है॥

१–चतुर्दश रज्जुलोक। २–पहर। ३–युवावस्था। ४–बुढ़ापा। ५–भय, डर।

अस्टेशन अस्टेशन पर दस्यु[१] रागादिक फिरते हैं।
गुरुजन चौकीदार चिलाकर सब की रक्षा करते हैं॥
भूर सुन्दरी कहे भविकों से पहुँचे पूरा ज्ञानी है॥
चेतो० ॥४॥

तजहु अनादी नींद मुसाफिर कर तैयारी रे ॥टेर॥
काया नगरी दश दरवाजे खुली खिड़कियां सारी रे।
चहुँदिशिके जन सबहिंचल बसे,सुध बुध क्यों हैबिसारी रे॥
तजहु० ॥१॥
कृष्ण हली[२] जैसे अवतारी सुर चक्री नरनारी रे।
तजहु० ॥२॥
जाना दूर अरु रात अंधेरी, पाप की गठरी भारी रे।
चार लुटेरे मारग लूटहिं पीछे हो बहु ख्वारी रे॥
तजहु० ॥३॥
प्रभु का नाम सुमिरले भविजन ऐहिक[३] पर सुखकारी रे।
भूर सुन्दरी देर न करहू मिथ्या चाल बिसारी रे॥
तजहु० ॥४॥

अचिरा के लाल लोचन[४] विशाल[५]। गल फुलमाल
लगा तिलक भाल चले ठुमक चाल ग्रह अँगुरी
रमावे ॥१॥

१—चोर, डाकू। २—हलधर। ३—इस लोक में तथा।परलोक में। ४—नेत्र।
५—बड़े।

अति सौम्य[१] वदन मुख चन्द्र किरण तन देव हसन मुख मन्द हसन रणझण पग नूपर धुनि सुनि मन हरखावे ॥२॥

अघताप हरण दीनन को शरण दुख दूर करण मम जनि[२] जर मरण प्रभु सब देना टार ॥३॥

तुम जगत नाथ मैं हूं अनाथ धर सिर पै हाथ दीनन पै दया रखावे ॥४॥

तू शान्ति करण भवताप हरण भव भय भंजन अरि दल गंजन भूर सुन्दरी को कर पार इम विनती दरशावे ॥५॥

चाल कालिंगड़ा ।

दिलदार पास बस ही ढूँढ़ने न जावना ॥टेक॥

गली और बाजार ढूँढ़ा शहर का द्वार ढूँढ़ा घर घर हजार ढूँढ़ा पता नहिं पावना ॥१॥

मक्के से मदीने जाओ मसजिद में जा शीस झुकाओ ऊँची कुक बाँग सुनाओ खुदा नहिं पावना ॥२॥

गंगा जाओ जमुना जाओ काशी से प्रयाग आओ, बद्री जगनाथ जाओ सनम नहिं पावना ॥३॥

शिखरजी शत्रुंजय ढूँढ़ो पार्श्व की फलोदी ढूँढ़ो नग गिरीनार ढूँढ़ो लोक दुख पावना ॥४॥

संवेगी दिगम्बर ढूँढ़ो चाहे तेरापन्थी ढूँढ़ो सच्चे मन से ढूँढ़ोगे तो सनम जलदी पावना ॥५॥

१–सुन्दर । २–जन्म ।

ऐसे नहीं पार जाओ निर्ग्रन्थ[१] का नाम पाओ तीर
कोप मान चलाओ भैरव को लजावना ॥६॥
जिनजी से ध्यान लगाओ निर्ग्रन्थ को शीस नमाओ
दया में चित्त बढ़ाओ भूर सुन्दरी का गावना ॥७॥

गज़ल ।

धरम से प्रीति कर प्यारे, उमरिया बीती जाती है ॥टेक॥
मनुज तन दोहला[२] पाया, चिन्तामणि हाथ में आया।
खोवे मति कांच लखी भाया[३], मूर्खपन खूब दिखलाया॥
धर्म० ॥१॥
गर्भ में आय कर लटका, घोर दुख सह धरनि[४] में पटका।
चूस कर दूध का गटका, भूल गया पूर्व का खटका ॥
धर्म० ॥२॥
बालपन खेल में भटका, युवापन खूब ही मटका।
जरा[५] में आयकर अटका, फिर तुझे काल ने झटका ॥
धर्म० ॥३॥
सुनो चेतन चतुर प्यारा, धर्म से मत रहे न्यारा।
आत्म का पा उजियारा, मोक्ष में जाय सुखियारा[६] ॥
धर्म० ॥४॥
स्वार्थ की सब करें यारी, लोभ तू छोड़ दे भारी।
तो हो भवसिन्धु[७] से पारी, भूरी सुन्दर कह हितकारी ॥
धर्म० ॥५॥

१—साधु। २—मुश्किल से। ३—हे भाई। ४—पृथिवी। ५—बुढ़ापा।
६—सुखी। ७—संसार सागर।

चाल क़व्वाली ।

देखो सखी पास की सूरत, याद दिन रात आती है ।।टेक॥
अश्वसेन राय कुल चन्दा । भा मोद राणी के नन्दा[१] ॥
हरितवर्ण देह आनन्दा । मोहनी मूरत सुखकन्दा ॥
देखो० ॥ १ ॥
कमठ शठ बनारसि आया । पञ्चाग्नी तप तपवाया ॥
बड़े बड़े काष्ठ जलवाया । दम्भ मत खूब फैलाया ॥
देखो० ॥ २ ॥
भामात हुलसानी । देखन को मन में ठहरानी ॥
बोली इम पास से वानी । तपी कूं देखो हित आनी ॥
देखो० ॥ ३ ॥
हुकम माता का यों पाया । कोडिम्बक तब हीं वुलवाया ॥
नाग[२] को तुर्त सजवाया । शीघ्र माता को विठलाया ॥
देखो० ॥ ४ ॥
आये तब गंगा के निकटे । तपी को देख दिल खटके ॥
बोले तव योगी से सटके[३] । हिंसा में काहे को लटके ॥
देखो० ॥ ५ ॥
तपी यों बोले तव वानी । है तप में कौन सी हानी ॥
लक्कड़ फड़वाये शुध ज्ञानी । दिखाये नाग अरु नागी ॥
देखो० ॥ ६ ॥
तपी का मान हत[४] कीया । संजम प्रभु पास ने लिया ॥
उपसर्ग जब आनकर दिया । अकाले गर्जना कीया ॥
देखो० ॥ ७ ॥

१—पुत्र । २—हाथी । ३—शीघ्र ही । ४—नष्ट ।

धरणीन्द्र सुर पद्मावती आया। सहस्र फण छत्र धरवाया॥
नृत्य[1] करता न दिखलाया। कमठ का मान[2] हटवाया॥
देखो० ॥ ८ ॥
आशी दीन छद्मस्थ रहिया। परीषह कष्ट बहु सहिया॥
सर्वज्ञपन शीघ्र ही लहिया[3]। शिखर पर जा सिद्धि गहिया॥
देखो० ॥ ९ ॥
पास की महिमा है भारी। सुनो शिशु[4] बृद्ध नर नारी॥
इनों की सेवा सुखकारी। रटे भूरसुन्दर हितकारी॥
देखो० ॥१०॥

चाल नाटक।

सुनले कुमती अरजी मेरी,
हाल हाल में तू झटपट ॥टेक॥
अनादि काल से तुझको मानी,
चर अरु अचर मती बौरानी।
अनन्तकाल निगोद में बीता,
सही वेदना[5] बहु फिर फिर ॥१॥
आर्य अनार्य सबही देखे,
दुनिया में क्रोड़ों गटपट।
गुरु विना नहीं ज्ञानवान हो,
चाहे तू मिला सो सटपट॥सुनले०॥२॥
इसलिये प्रभु पाद पद्म में,
चित्त लगावे तू चटपट।

१–नाच। २–घमण्ड। ३–पाया। ४–बालक। ५–पीड़ा।

गुरु ही ज्ञानी तीर्थ है मोटा[१],
मन क्रम वच से हो लटपट ॥सुनले०॥३॥
भूरिसुन्दरी यों अर्ज गुजारी,
मुझ को तारो बसि घट[२] घट ॥४॥

जिन तेरी शरण प्रभु तेरी शरण मैं आई हूँ ॥टेक॥
क्रोध मान लहरी नदिया,
गहरी लोभ के वेग बहाई हूं ॥१॥
सबल माया ने जाल बिछाया,
चहुँ ओरन से फिरि आई हूँ ॥२॥
क्षण क्षण काया में रोग लगाया,
काल अनादि से भ्रम[३] आई हूं॥३॥
भूरी चरणन दासी शिव सुख की प्यासी,
जिनजी की आस कर आई हूं॥४॥

लाली गई लज्जा गई लक्षण भले सब ही गये।
लप लप करे लकड़ी लई बली लीलरी लाला[४] चुए ॥
हाँ नाक का लीट वारवार आता है बहु।
लोभ भी बधता अति लघुशंका भी करता है बहु ॥
सेना में दस हैं लकार बस ऐसी जरा आती भई।
सब प्राणियों को विकल कर भूरसुन्दर कहती भई ॥

१-बड़ा। २-हृदय। ३-घूम। ४-जार।

चाल खंभाच ।

चंचल मन निसदिन भटकत है ।
जिमि कपिवर[1] तरु[2] ऊपर चढ़,
फिर डार डार पर अटकत है ॥१॥
रुकत जतन से छण विषयन से,
फिर तिन ही में अटकत है ॥२॥
काच हेत वन लोभी मूरख,
चिन्तामणि को पटकत है ॥३॥
सुधा[3] छोंड़ि कहे भूरसुन्दरी,
तुच्छ विषयरस गटकत है ॥४॥

चाल लावनी ।

अरिहंत प्रभू का दिल से प्यारे,
नाम भुलाना ना चहिये ॥१॥
नरभव उत्तम पाकर इसमें,
खाक मिलाना ना चहिये ॥२॥
कर्ण इन्द्री वश होकर भविजन,
मृगवत[4] मरना ना चहिये ॥३॥
सुन्दर नारी देखत प्यारी,
मन को लगाना ना चहिये ॥४॥
जलते दीपक माँहि पतँग सम,
वामें परना ना चहिये ।

१—बन्दर । २—वृक्ष । ३—अमृत । ४—हिरन के समान ।

मुनि दरशन से नयन युगुल[१] को,
शीघ्र सफल करना चहिये ॥५॥
मधुकर[२] सम हो घ्राण के वशमें,
कुसुम में फँसना ना चहिये ।
कली कली का लेकर रस,
अकाल मरना ना चहिये ॥६॥
रसना के वश मीन मरत फिर,
काहे स्वाद करना चहिये ।
रसके लोभी दुर्गति भोगैं,
स्वादु भी होना ना चहिये ॥७॥
उन्मत्त करिवर स्वेच्छक भ्रमता,
विषय में फँसना ना चहिये ।
कजली वन को छुड़ाके,
वासम बन्ध में पड़ना ना चहिये ॥८॥
यह माया बिजली चमका,
मन को जमाना ना चहिये ।
बिछुड़ेगा संयोग भोग का,
रोग लगाना ना चहिये ॥९॥
जो करना शुभ काज आज कर,
देर लगाना ना चहिये ।
कल जाने क्या हाल हो कल[३] में,
गुरु का वचन भुलाना ना चहिये ॥१०॥

१—दोनों नेत्रों को। २—भौंरा। ३—शान्ति दशा में।

दुर्लभ नर भव पाकर प्राणी,
विषय में खोना ना चहिये।
भवसागर तट नाव लगी है,
भँवर में जाना ना चहिये ॥११॥
नारी मोह के हेर फेर में,
इसमें अटकना ना चहिये।
वमित करी जो वस्तु उसी पर,
दिल को लुभाना ना चहिये ॥१२॥
बचना चाहे जो नर मृत्यु से,
धर्म भुलाना ना चहिये।
परमातम निज आतम में है,
पर में जाना ना चहिये ॥१३॥
कस्तूरी है मृगनाभी में,
चहुँ दिशि फिरना ना चहिये।
करो संग तुम शुद्ध साधु का,
पाखंडिहिं तजना चहिये ॥१४॥
कहती है इमि भूरि सुन्दरी,
भवसागर तिरना चहिये।
अजर अमर के सुख में हो लय,
निजानन्द मरना चहिये ॥१५॥

चाल कवाली।

कहाँ गये जैन जाती के वीर,
भवदधि[1] पार लगाने वाले ॥टेक॥

1—संसार समुद्र।

कहाँ गये हर केसी मुनिराय,
जिनकी सुर[१] करते थे सहाय।
दिया विप्रों का मान घटाय,
फिर मुक्ती में जाने वाले ॥१॥

भृगु पुरोहित विप्र उदार,
तिन के अंगज[२] दोय। कुमार।
इक्ष्वाकू राजा सुखकार,
सबही मुक्ति सिधाने वाले ॥ कहाँ० ॥२॥

होगये संयती जैसे राय,
वह तो मृगया वन को जाय।
वहाँ गदभाली गुरु पाय,
झटतें संयम लेने वाले ॥ कहाँ० ॥३॥

मृगा पुत्र वैराग्य बसाय,
मुनिजन देखे ज्ञान के मांय।
मात पिता से आज्ञा पाय,
जैनी दीक्षा पाने वाले ॥ कहाँ० ॥४॥

कहाँ वे अनाथी से मुनिराय,
रूप जस देखा श्रेणिक राय।
भारत रायों में सिरताज,
जो जिनवानी के दीपाने वाले ॥कहाँ०॥५॥

कहाँ हैं धन जी मन जी वीर,
कहाँ भज्जू जैसे पूरे फकीर।

१–देव । २–पुत्र ।

कहाँ रहे पनालाल मुनीवरि,
जो थे छाछ के पीने वाले ॥ कहाँ० ॥६॥
जिनकी इस सन्तति हम आज,
जिनसे डरती नहीं समाज।
तासे पाखंडी रहे गाज,
मिथ्या दोष लगाने वाले ॥ कहाँ० ॥७॥
अब इस जैन जाति मंझार,
एकता सेव न रहा लिगार[1]।
भूर सुन्दरी करती विचार,
क्योंकर उन्नति पाने वाले ॥ कहाँ० ॥८॥

करके परनारी का संग नाहक,
दुरगती जाने वाले ॥टेक॥
जो पर तिया से करते प्यार,
नसता धन जोवन सुखकार।
धक्के पीछे मिलते चार,
गौरव[2] नाश कराने वाले ॥ करके० ॥१॥
तुम तो वा से हुए हतास,
वह नहिं आवत तुम्हरे पास।
करहि तुम को अतिहि उदास,
झुर झुर खाड सड़ाने वाले ॥ करके० ॥२॥
आखिर धन धर्म गँवाय,
जाती वेशरमी शिर छाय।

१—ज़रा भी। २—बड़प्पन।

निर्मल कुल को लीक[१] लगाय,
जा दुर्गति दुख भरने वाले ॥ करके० ॥३॥

रावण लंकपती कहलाय,
फिर तिन सीता लई चुराय ।
लछमन से लइ मौत के माय,
नरक चतुर्थी जाने वाले ॥ करके० ॥४॥

गुप्ती है पर नारी की मार,
जिस दुख का नहिं पावत पार ।
मत कर मूरख अस पतियार,
सद्गुरु रह समझाने वाले ॥ करके० ॥५॥

शिक्षा सुन्दरी की हितकार,
मेटो विषिया मूल विकार ।
पर तिरिया से कर दे किनार,
जो शिव सुख के पाने वाले ॥ करके० ॥६॥

बनि आये वैद्य गुरु देव भक्त हितकारी ॥टेर॥
श्रद्धा की बूँटी लिये फिरें झोली में ।
परुपन[२] की करत पुकार मधुर बोली में ॥
बिन ज्ञानवान बीमार पड़े टोली में ।
कर देंगे यह दूर ज्ञान गोली में ॥
भव्य जीव मिलें सर्व शान्ति शान्ति कर टेरी ॥बनि०॥१॥
ये मात पिता सोदर[३] तेरे नाहीं ।
तिय भगिनी मित्र अरु ज्ञाती ॥

१—दाग, दोष, कलङ्क । २—प्ररूपणा । ३—भाई ।

नहीं है कोई दिन चार का जीवन ।
मेरे भाई किस पर तू रहा लुभाय ॥
भूल तुझे छाई हे नाथ, मेरे जगदीश शरणमें आई॥ बनि०॥२॥

मेरे लिये आचार्य विद्वद्वर आई,
जिन आगम शास्त्र पीयूष[1] मुझे पिलवाई ॥
तप रूपी औषधि देय मोह ज्वर खोय ।
मेरी निर्मल होगई देह विपती सब धोई ॥
अब कृपा करो गुरु देव भक्त हितकारी ॥ बनि० ॥३॥

धृति[2] शान्ति श्रद्धा क्षमा ज्ञान दिखलाई ।
मैं मन में होगई मगन, संजम चितलाई ॥
मेरी गुरुनी जी महाराज परम सुखकारी ।
पहुँची हैं स्वर्ग मझार शान्ति मगधारी ॥
कहे भूर सुन्दरि वचन हितकारी ॥ बनि० ॥४॥

त्रिभंगी ।

कुन्दनपुर नगरी शोभा वगरी,
उपवन वारी बहुत भरी ।
सिद्धारथ आया जग मन भाया,
शत्रु हटाया युद्ध करी ॥१॥
त्रिशलादे रानी रम्भ समानी,
सब गुण खानी मन हरनी ।
सुमती गज गमनी निरुपम[3] रमनी[4],
चारु वदनी सुख करनी ॥२॥

१—अमृत । २—धैर्य । ३—अनोखी । ४—स्त्री ।

भूषण दमकें बिजली सम चमकें,
सुन्दरि झलके काम बसे।
शय्या[1] पै सोवे निद्रा पहुते कुछ,
जागृत थी दरस बसे ॥३॥
तब सुपने पाये चौदह आये,
मन हरषाये प्रेम घने।
नृप[2] पै आई बात सुनाई,
आदर पाई राम भने ॥४॥
सुपने ये स्वामी हैं हित कामी,
कहुं शिरनामी अर्थ कहो।
बोले यों राया मोद जु पाया,
मुझ मन भाया अर्थ गहो ॥५॥
इम कुलचन्दा रूपे इन्दा,
दुःख निकन्दा सुखकारी।
नव मास हों पूरे नाहिं अधूरे,
जन्महिं शूरे हितकारी ॥६॥
ज्योतिषी बुलाये अर्थ कराये,
भेद सुनाये चाव घणो[3]।
तीन लोक के स्वामी संयम कामी,
शिवगति गामी राम भणो ॥७॥
पाठक की वाणी अतिगुण खानी,
मन अति मानी राय सुणो।
रानी से भाषे प्रेम प्रकाशे,
चित्त हुलासे भार गुणे ॥८॥

१—सेज। २—राजा। ३—बड़े चाव से।

मधु[१] सित[२] पक्षे तेरस दिवसे,
तमी ने मनिवा से जन्म हुआ।
छपन कुमारी आईं मंगल गाईं,
नाद सुनाई हर्ष हुआ ॥९॥
इन्दर सब आये शीस नमाये,
प्रभु गुण गाये सुखकारी।
इन्दराणी आवें नृत्य[३] करावें,
गीत जु गावें हितकारी ॥१०॥
रिमझिम गाजें नूपुर बाजें,
नाटक की धुनिकार उठें।
मेरू पै आवें हवन करावें,
शिकर कंपावें अंगूठे ॥११॥
अति बलवन्ता महा पुनवन्ता,
सबहिं नमन्ता भक्ति घने।
बधाई जावे आवे नृप सुख पावे,
बन्ध छुटावे बन्दि तने[४] ॥१२॥
दिन तीजा आवे सूर्य दिखावे,
रात जगावे सनमानम्।
दिन दश आवे उत्सव पावे,
नाम रखावे वरधमानम् ॥१३॥
माता पै आवे अमृत पावे,
गोद खिलावे मनमानम्।
गोदी हुलरावे अंगुरी खिलावे,
पग ठमकावे झमकारम् ॥१४॥

१—चैत्र। २—शुक्ल। ३—नाच। ४—कैदियों के।

मोह नींद सों पगहिं पसारे।
चिड़िया चुग गई खेत तुम्हारे ॥४॥
झूट कपट कर दाम कमाये।
भोग विषय सुख चैन उड़ाये ॥
दान शील से कीन्ह किनारा।
देत सुजन तोहि धिकारा ॥५॥
तेरे कर्म भये नाव समाना।
जामें बैठ्यो चेतन राना ॥
गहरी नींद अरु दूर किनारा।
दम कोई में डूबन हारा ॥६॥
मन अपने में चेतहु[१] भाई।
करि कुछ लेहु धरम कमाई ॥
गाम मँडावर नग[२] का सारा।
तामे भूरसुन्दरि उचचारा[३] ॥७॥
निज पर आतम को जो तारहिं।
सर्व विपति सब की वे टारहिं[४] ॥

चुगली न करजो रे। चुगली न करजो रे।
म्हारी प्यारी बहना रे ॥ टेर ॥
घर छोड़ी ते संजम लीनो,
आर्या नाम धराओ रे।
आर्यपना को काम नहीं,
अनार्यपनो मन भायो रे ॥चु०॥१॥
जिसके चित में वाढ़ी चुगली,
सब पापन को मूल रे।

१—विचारो। २—पर्वत। ३—कथन किया। ४—दूर करते हैं।

विन देखी विन सुनी कल्पना,
भाखे मोटा कूड़[१] रे ॥चु०॥२॥
साध्वो मोटा नाम धरावे,
नहिं संयम को लेश रे।
औरन की तारीफी सुन कर,
चित में करे कलेश रे ॥चु०॥३॥
अछता[२] मोटा[३] आल[४] लगावे,
सावद[५] भाषा बोली रे।
निश्चयकारी भाषा कहती,
मन में जरा न तोले रे ॥चु०॥४॥
अपना औगुन रती न देखे,
पर घर ढूँढन जावे रे।
शास्त्र को तो रहस[६] न जाने,
पर अवगुण कहँ गावे रे।।चु०॥५॥
समकित[७] का तो लेश नहीं है,
संयम कहँतें पावे रे।
समभाव तो पास नहीं है,
थोथा गाल बजावे रे ॥चु०॥६॥
घन वरसे बन राई फूले,
नीच जवासो सूखे रे।
यहि दृष्टान्ते निन्दक जानो,
श्वान समान जु भोंके रे ॥चु०॥७॥
धरम तणो[८] तुम मरम जु परखो,
मिथ्या हठ मत तानो रे।
सांची श्रद्धा गहहु[९] जैन की,
तद होसी कल्यानो रे।।चु०॥८॥

१—झूठ। २—अविद्यमान। ३—बड़ा। ४—दोष। ५—सावद्य। ६—रहस्य, मर्म। ७—सम्यक्त्व। ८—धर्म का। ९—पकड़ो।

गृहस्थ को तो शिक्षा देवे,
मरम मोसा[१] नहिं देना रे ।
रहस[२] की हू बात न खोलो,
आप करे अज्ञाना रे ।।चु०।।६।।
भूरसुन्दरी की ये ही शिक्षा,
शुध मन से दिल धारो रे ।
चाड़ी चुगली जो कोइ तजसी[३],
निश्चय खेवो पारो रे ।।चु०।।१०।।

प्रभू भजन विन गाफिल,
प्राणी योंही उमर सब खोई जी ।
मेड़ी मन्दिर माल खजाना,
काम न आवे कोई जी ।।१।।
माया माया करतो मूरख,
तृष्णा मांहि तणाणो जी ।
लोक तणी लज्जा नो लेहने,
कोटे बाँध्यो पाणो जी । २।।
जीवतण कोई जतन न कीयो,
मन माया में मोह्यो जी ।
रात दिवस तत्पर है फंसियो,
खाली नीर[४] विलोयो जी ।।३।।
लोक कुटुम्ब में मोटो हैकर,
काम बिगाड़ो सारो[५] जी ।
भूरसुन्दरी कहे रे प्राणी,
अभी समझ तो सारो[६] जी ।।४।।

❀ इति ❀

१-ताना । २-रहस्य । ३-छोड़ेगा । ४-जल । ५-तमाम ६-अच्छा है ।

❀ श्रीः ❀

श्री भूर सुन्दरी बोध विनोद पुस्तक का

शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
ख	३	तृष्णा, त्याग	तृष्णात्याग
,,	१४	जेष्ठ	ज्येष्ठ
,,	१५	जेष्ठ	ज्येष्ठ
ग	१०	कण्टस्थ	कण्ठस्थ
५	२६	पथक् २	पृथक् २
७	१४	त्रिट्ठइ	चिट्ठइ
,,	१५	अत्राणी	अन्नाणी
,,	२३	है	हैं
१०	१७	और	और
१२	२०	वेश	वेष
१६	१३	दो	हो
,,	२३	कहा कि	कहा है कि
२१	२१	तापर्त्यं	तात्पर्यं
२३	२७	तथा,	तथा
२६	३	शुद्धि के के	शुद्धि के
२६	२१	स्थढिल	स्थंढिल
२७	८	अचित	अचित्त
२८	२०	आशक्ति	आसक्ति
२६	८	चरित्र	चारित्र
,,	१२	उद्देग	उद्वेग
,,	१७	उचते	उच्यते
३०	६	हुदम्	हुदाम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२	२२	लोकोपयगी	लोकोपयोगी
३६	१६	करता है	करना है
३८	१३	प्ररूपणा है२	प्ररूपणा२ है
३६	६	करके	करने
,,	११	सद्गुरु, सत्संग	सद्गुरुसत्संग
,,	२६	आता	जाता
४२	२५	पुरषार्थं	पुरुषार्थं
४३	१	प्रथम	द्वितीय
४७	१	प्रथम	द्वितीय
४७	१६	आशक्ति	आसक्ति
,,	२७	सके	सकें
४८	८	दुःख	दुख
,,	२२	लगा	लगे
४६	१२	होर्न	होत
५०	५	जिनि	जिमि
५१	×	५	५१
,,	२	॥१३॥	॥११॥
,,	४	॥१४॥	॥१२॥
५३	१	शुद्द	शुध
,,	४	जक	कज
,,	६	भूक्षुकि१३	भू१३ क्षुकि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५४	१६	पया	यया
"	२२	गर्भ	गर्व
५५	६	उथम	उत्तम
"	१७	मतलेय१८	मत१८लेय
५६	८	श्रवण	श्रमण
"	११	निमत्ते	निमित्ते
५७	१०	साधु	साधू
"	११	दुर्लंभ	दुलभ
"	१६	नहीं	नहि
"	१७	मूरछा	मूर्च्छा
"	२३	पुण्यवान	पुण्यवान्
५८	२०	अनिष्ठ	अनिष्ट
५६	११	पहुँचे	पहुँचे
६१	१४	यह	ये
"	१२	सहु	सहु७
"	२०	×	७–सब
६२	१४	निज	जिन
"	२२	१–सब	१–संदेह
६४	२१	पापा नहिं	पापाणहिं
६५	५	घनाघरी	घनाक्षरी
६६	१६	समकित१० धारी	समकित धारी१०
६७	१५	क१०कोदा	ककोदा१०
६७	१५	तार११	नार११
"	१६	औत्पत्ति की	औत्पत्तिक
६७	२१	औत्पत्ति की	औत्पत्तिक
"	२२	त्रिला	त्रिल
६८	२	हरिहन्तं	अरिहन्तं
६६	५	नैलहिं	तैलहिं
७१	६	अष्ठ	अष्ट
७३	२	जानत तहँ१	जानतमहँ१
"	१८	है	हैं
७४	४	का	के
७७	१०	जाणे न	जाणे
"	१६	उत पै	वन पै
७६	२३	जाउँ	जाऊँ
८०	६	घटा न	घटान
६८	११	गदभाली	गदमाली
१००	१०	सद्गुरु	सद्गुरु
१०३	२	ने मनिवा से	नेमनिवा
"	१२	शिकर	शिखर
"	२५	शुक्ला	शुक्ल
१०६	१६	ते	ने
१०६	२५	पवत	पर्वत
१०८	१७	जीवतण	जीवतणा



❀ श्रीः ❀

श्रीमन्त्रराजगुण कल्प महोदधि

अर्थात्

श्री नवकार मन्त्र की व्याख्या का अपूर्व ग्रंथ

श्रीयुत जैन बन्धुओ ! यदि आपको अपने परम उपास्य देव श्री पञ्चपरमेष्ठियों की उपासना की महिमा, विधि तथा उस के फल को जानने की इच्छा हो, उनको नमस्कार करने की विधि को बतलाने वाले श्री नवकार मन्त्र के अकथनीय प्रभाव, उपासना-विधि, भङ्गसंख्या, नष्ट, उद्दिष्ट, अष्टसिद्धि, योगमार्ग एवं तत्सम्बन्धी तत्त्वपरिज्ञान आदि अति लाभदायक एवं मनुष्य जन्म को कृतार्थ करने वाले विषयों को अपने अन्तःकरण में अवकाश देने की आपकी अभिरुचि हो, यदि आप श्री नमस्कार कल्प के शीघ्र फलदायक मन्त्रों के चमत्कार से अपना तथा दूसरों का कल्याण करना चाहते हैं तो एक वार नीचे लिखे पते से "श्री मन्त्रराजगुण कल्प महोदधि" नामक वृहद् ग्रन्थ को मँगवा कर अवश्य पढ़िये। इसके अवलोकन से आपको अपूर्व आनन्द होगा, क्योंकि श्री नवकार मन्त्र की व्याख्या का यह अपूर्व ग्रन्थ है।

☞ मूल्य ३॥) रुपये से घटाकर प्रचारार्थ वह मूल्य २) रुपये कर दिया गया है; डाक व्यय पृथक् लगेगा।

जयदयाल शर्मा शास्त्री —

ठिकाना सेठ मंगलचन्द जी झाबक की हवेली
बेगाणियों का चौक—बीकानेर।
(राजपूताना)